Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

Re. I

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर पढ़िये

अमृतफल आम ३
—मुकुलचन्द पाण्डेय

चन्द्रमा का भू-विश्लेषण ८
—विजयकान्त श्रीवास्तव

दूर देश के पंछी ११
—विनोदचन्द्र विद्यालंकार

वायुमण्डल के अद्भुत रहस्य (३) १६
—कुलदीप चड्ढा, एम.एस-सी.

भारतीय मसाले २३
—रतनकुमार टण्डन

जोजेफ ब्लेक २७
—नरेशचन्द 'पुष्प'

खून चूसने वाले मेहमान ३०
—बलराजसिंह सिरोही

गांठ से (सं)गणक ३७
—महेन्द्र साह

पीलिया या कामला ४३
—वी. मोहन

स्थायी स्तम्भ

वैज्ञानिक उपलब्धियां ४७

अपनी बात

भारत की विकासमान विज्ञान-प्रतिभा पर एक और क्रूर प्रहार हुआ। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के युवा एवं मेधावी कृषि-वैज्ञानिक डा. विनोद शाह ने आत्महत्या कर ली। लगभग बारह वर्ष पूर्व इसी संस्थान के एक अन्य युवा एवं मेधावी कृषि-वैज्ञानिक डा. जोजेफ ने भी अपने जीवन का अन्त कर लिया था। बंगलोर के एक प्रतिभाशाली वैज्ञानिक को भी इसी प्रकार हमने खो दिया।

विकराल काल ने हमारे भाभा और साराभाई को असमय में ही हमसे छीन लिया था—किन्तु काल की गति के समक्ष मानव की क्या गति? विवशता ही रही। परन्तु ये आत्महत्याएं? एक वैज्ञानिक को—विज्ञान की सेवा में समर्पित विशुद्ध बुद्धिजीवी को—यदि अपने प्राणों की आहुति देने पर विवश होना पड़े तो क्या इसे भी काल की कुटिलता मानते हुए आंसू पोंछकर चुप रहा जा सकेगा?

इन हुतात्मा वैज्ञानिकों ने अपने बलिदान के जो कारण बताये—प्रशासन के जिस भ्रष्टाचार की ओर अभियोगी अंगुली उठायी—उन पर राष्ट्रीय स्तर पर विचार करके निर्णय लिया जाना तथा उन निर्णयों का निष्ठापूर्वक परिपालन होना, जिससे ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो, राष्ट्र के भविष्य के लिए हितकर अतएव परमावश्यक है।

वर्ष १३

अंक ५

एक प्रति : Re. 1.00
वार्षिक : Rs. 12.00

सम्पादक : हरिकृष्ण मेहरा
प्रकाशक : मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा-३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पुस्तक
गुरुकुल कांगड़ी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृतफल आम

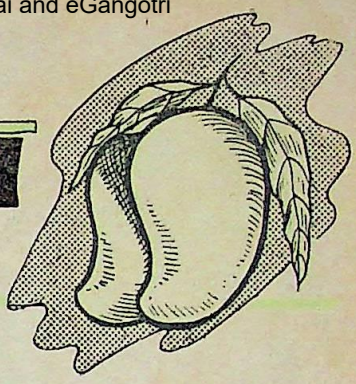

मुकुलचन्द पाण्डेय

भारत के विगत ४००० वर्षों के लम्बे इतिहास में निरन्तर प्रशंसित और खाने में स्वादिष्ट फल आम का उल्लेख मिलता है। इसे तो फलों का राजा भी कहा गया है। आम से सम्बन्धित अविस्मरणीय साहित्यिक कृतियों में फारसी कवि तुर्कमान तथा उर्दू साहित्यकार अमीर खुसरो की रचनाएं उपलब्ध हैं। उष्ण कटिबन्धीय फलों में आम निस्सन्देह अद्वितीय महत्त्व रखते हुए मानवता की अप्रतिम सेवा करता है। चाहे पका हो या कच्चा, आम सदैव ही एक समान सेवा-भाव में रत रहकर भोजन को सरस बनाता है। आम जिसे वनस्पति विज्ञान में 'मैंजीफेरा इण्डिका' कहते हैं, दक्षिणी एशिया का मूल निवासी है। भारत में कुल बागों के क्षेत्रफल के लगभग ५० प्रतिशत भूभाग पर आम के पेड़ लगाये जाते हैं जो लगभग डेढ़ लाख एकड़ है। आम की कुल वार्षिक पैदावार अनुमानतः साढ़े सात लाख टन है।

सुमधुर आम्रफल परमानन्ददायक होता है। न केवल मनमोहक स्वाद ही इसे सर्वप्रिय बनाता है बल्कि इसमें विटामिन ए व सी तथा अनेक दुर्लभ खनिज लवण भी पाये जाते हैं। निस्सन्देह यह आंचलिक फलों में सर्वाधिक पोषाहार, उत्पादन तथा बोये जाने की दृष्टि से श्रेष्ठतम है। अच्छी किस्मों में घुलित शर्करा लगभग २० प्रतिशत, अम्लीय तत्त्व ०·२ से ०·५ प्रतिशत तथा प्रोटीन तत्त्व १ प्रतिशत पाया जाता है।

भूमि तथा जलवायु

यद्यपि उष्ण जलवायु आमों की फसल के लिए अधिक उपयुक्त होती है लेकिन इसमें भी स्थान-स्थान पर किंचित विभेद हुआ करता है। आम समशीतोष्ण क्षेत्रों में अच्छी तरह से फलता-फूलता है, लेकिन उन क्षेत्रों में जहां जून से सितम्बर तक चार महीने जोरदार वर्षा होती है और शेष आठ महीने सूखा रहता है वहां इसकी अच्छी फसल होती है। असम और केरल सदृश क्षेत्र में जहां वर्ष के आठ महीने नम तथा आर्द्र रहते हैं, आम भरपूर नहीं फलता। साथ ही नवम्बर से फरवरी तक बौर आने के समय वर्षा, तूफान आदि का जो भीषण प्रकोप होता है उसमें रोग और कीड़े-मकोड़ों के आक्रमण की पूर्ण आशंका रहती है। हिमांचल प्रदेश, कश्मीर, पंजाब और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों का तापमान आम के लिए उपयुक्त नहीं होता, जबकि महाराष्ट्र, मैसूर, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, पश्चिमी बंगाल के समीपवर्ती क्षेत्र, गुजरात, पूर्वी उत्तर प्रदेश, उड़ीसा की जलवायु आम के लिए पर्याप्त अनुकूल होती है। इसकी विस्तृत फैली हुई जड़ों के लिए गहराई में पूर्णरूपेण जल-निकासित भूमि की आवश्यकता होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

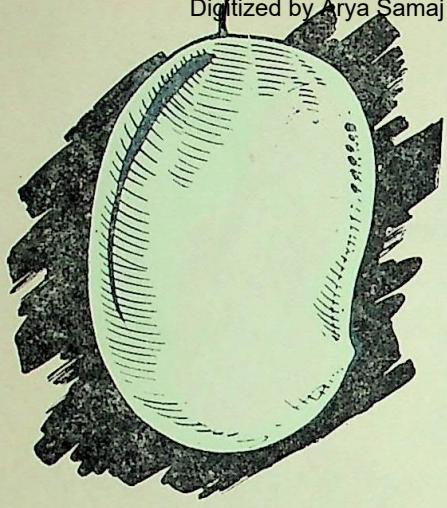

उत्तर भारत का प्रसिद्ध 'लंगड़ा'

गंगा-जमुना के मैदानी भागों की दोमट मिट्टी में फसल बहुत अच्छी होती है। पथरीली तथा जलरोधी भूमि अनुपयुक्त हुआ करती है।

विविध किस्में

अच्छी किस्मों के लिए उनका व्यावसायिक दृष्टि से लोकप्रिय होना ही अच्छा समझा जाता है। किसी क्षेत्र विशेष की भूमि, जलवायु, अनुकूलन क्षमता, उत्पादकता तथा अच्छी किस्म—ये सभी एक साथ मिल कर अच्छाई को पूरा करते हैं। इन सभी बातों को ध्यान में रखकर विविध क्षेत्रों में आम की भिन्न-भिन्न जातियां पायी जाती हैं। आम के लिए कृषि-जलवायु की दशाएं बन्धन-सी प्रतीत होती हैं क्योंकि उत्तरी भारत की किस्म दक्षिणी भारत में तथा दक्षिणी भारत की किस्में उत्तरी भारत में अच्छी प्रकार से नहीं फलतीं। उत्तर में लंगड़ा, दशहरी, बाम्बे ग्रीन, वहिष्ठ चौसा; पूर्व में फजली, बम्बइया माल्दह, हिमसागर, लंगड़ा, जरदालू, कृष्ण-भोग, गुलाबखस; पश्चिम में अलफोन्सो से पैड़ी, राजापुरी से केसर तथा मलकुर्ड; दक्षिण में बनीशन, नीलम्, बंगलौरा, रूमानी, मलगोबा, रासपुड़ी आदि प्रसिद्ध हैं।

सैकड़ों किस्नों में कुछ किस्में ज्यादा लोकप्रिय हैं—जैसे लंगड़ा, अलफोन्सो तथा दशहरी। दशहरी इन सबमें ज्यादा स्वादिष्ट है और अल्फोन्सो भी इसी से मिलता-जुलता है। नीलम और बंगलोरा भी खूब पसन्द किये जाते हैं। कन्याकुमारी सदृश तटवर्ती क्षेत्रों में जहां सूर्य की रोशनी तेज पड़ने से तापमान घटता-बढ़ता रहता है, वर्षभर में आम की दो फसलें हुआ करती हैं। ये किस्में हैं—नीलम, बंगलोरा, रूमानी तथा पैड़ी। दुर्भाग्वश इन सबमें कोई भी किस्म पूर्णतः सगुण नहीं है, प्रत्येक में कुछ न कुछ अवगुण अवश्य हैं। उत्तरी क्षेत्र की किस्मों में लाही रोग का लगना; ज्यादा फलों से लद जाने पर एक वर्ष के अन्तर में फल आना तथा अल्फोन्सो किस्म में स्पंजी ऊतक रोग लगना—ये सामान्य दोष हैं।

दशहरी आम उत्तरी क्षेत्र की व्यावसायिक किस्मों में सर्वोत्कृष्ट है। यह बड़ी जल्दी न केवल फलों से लदकर झुकता ही है बल्कि आरम्भ से ही अच्छी फसल देने लगता है। दोष केवल इतना ही है कि अकेले यह स्वतः अक्षमता प्रदर्शित कर कुछ दिनों में कम फल देने लगता है। कम ज्ञात उन्नत किस्मों में गोपालभोग, अल्फान, फजारी, जाफरानी, खसलखस, अमानखुर्द, बुलन्दबाग, जमुर्रद, खेरमापट, सोनातोल, निसार पसन्द, अजीज पसन्द, अनुपम, सफदर पसन्द तथा लक्षाशिकान हैं। इन्हें आमतौर पर 'बचकाना आम' कहते हैं। इनमें कड़ा, बिना रेशे का गूदा होता है जिसे चाकू से काटकर खाया जा सकता है। दूसरे आम वे हैं जिनमें पतला, तथा मुलायम रस होता है। उन्हें सरलता से चूसा जा सकता है। बीजों से बोये जाने के कारण इन्हें उन्नत नस्लों का नहीं माना जाता, क्योंकि वर्धी-प्रचारण द्वारा रोपे गये पेड़ ही उन्नतिशील किस्मों में गिने जाते हैं। इनमें मिठवा गाजीपुर, सुन्दरशाह, लखनऊ सफेदा, हरदिल अजीज व रसपुतिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी

उत्तर प्रदेश की, और राजपुरी गुजरात की तथा चिन्नारसम, चरुकुरसम व पेद्दारसम आन्ध्र प्रदेश की प्रसिद्ध किस्में हैं।

आधुनिक खेती : रोपण

भारत में आम के रोपण को वर्धी प्रचारण द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। चीरा द्वारा कलम लगाकर नया पौधा तैयार करना एक सामान्य तरीका है। इस विधि में बीजों को किसी नर्सरी में दूर-दूर बो दिया जाता है। एक वर्ष बाद जब पौधे ४५-६० सेंटिमीटर के हो जाते हैं तो उन्हें कलम लगाने वाले वृक्ष के पास लाते हैं। कलम वाले पेड़ की छाल को थोड़ा छील लिया जाता है और नवोद्भिज को भी थोड़ा छील लेते हैं। फिर इन्हें आपस में जोड़कर मजबूती से बांध दिया जाता है। बांधने के तीस-चालीस दिन में इनके जुड़ जाने के बाद मुख्य वृक्ष के ऊपरी सिरे को काट देते हैं। इस प्रकार तैयार हुए नये पेड़ को पुनः रोपण द्वारा एक पक्ष या महीने के बाद खेत में लगा देते हैं। इस विधि में पौधों के मरने की ज्यादा सम्भावना रहती है अतः अन्य विधियों का इस्तैमाल किया जाता है। गुट्टीकरण की दूसरी विधि में मूल वृक्ष के तने में गहरा छेद बनाकर उसमें नये पौधे का निचला हिस्सा काटकर जोड़ देते हैं। एल्काथीन के १००–१५० मीटर लम्बे फिल्म से मजबूती से बांधकर जोड़ देते हैं। जब समझते हैं कि नया पौधा बढ़ने लगा तो ऊपर के हिस्से को काट देते हैं।

गुट्टी के अतिरिक्त मुकुलन द्वारा भी नये किस्म तैयार किये जाते हैं। मूलवृक्ष में 'टी' अक्षर (T) के आकार का एक चीरा लगा देते हैं। कलिका सहित छिलके का एक अंश लेकर कटे हुए 'टी' में जोड़कर मजबूती से बांध देते हैं। जब कलिका बढ़ जाती है तो वृक्ष के ऊपरी हिस्से को काट देते हैं। देश के अनेक अनुसंधान केन्द्रों तथा प्रयोग संस्थानों में मुकुलन की फारकेट तथा पैक विधियां अपनायी गयी हैं।

वर्धी प्रचारण की गुट्टी या ग्राफ्ट विधि

वर्षा ऋतु में ही पौधों का लगाना उत्तम होता है क्योंकि इन दिनों हवा में पर्याप्त नमी होती है। पौधे लगाने के पहले भूमि को खूब अच्छी तरह से जोत कर समतल कर लेना चाहिए। अब ९ से १२ मीटर की दूरी पर इन्हें लगाना चाहिए। पंक्तियों में लगाकर तब तक बराबर पानी देना चाहिए

वर्धी प्रचारण की मुकुलन विधि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब तक कि पौधे पूरी तरह से न उग जायें। बीच-बीच में अन्य छोटी फसलें भी लगा देना चाहिए जब तक कि पौधे पूरी तरह से तैयार न हो जायें।

आम का संकरण

मनोवांछित किस्में प्राप्त करने के लिए अनेक गुणों को एक में ही समाहित करने की क्रिया को संकरण कहते हैं। आम के प्रसंग में यह कार्य सबौर (बिहार), कादूर (आन्ध्र प्रदेश) तथा सहारनपुर (उ. प्र.) में मुख्यतया आरम्भ किये गये परन्तु इनमें पर्याप्त सफलता न मिल पाने के कारण प्रचुर मात्रा में उन्नत किस्में विकसित नहीं हो सकीं। उन्नतिशील किस्म में ऐसे वृक्ष को विकसित करना लक्ष्य था जिसमें पैदावार अच्छी हो तथा गुण भी उत्कृष्ट रहें। इस सन्दर्भ में कादूर में प्राप्त स्वर्ण जहांगीर (चिन्ना स्वर्णरेखा × जहांगीर) उल्लेखनीय है जिसमें अच्छे रंग वाले पर्याप्त फल शीघ्र मिलते हैं। महमूदबहार व प्रवाशंकर दो किस्में लंगड़ा × कालीपद तथा बम्बइया × कालीपद से तैयार की गयी हैं जिनमें प्रथम तो काफी टिकाऊ तथा दूसरी जनक से ज्यादा देर में पकने वाली है। इस प्रकार भारतीय कृषि अनुसंधानशाला में आम के संकरण का कार्य तेजी से क्रमवार किया जा रहा है जिससे वर्ष में दो फसलें ली जा सकें।

परम स्वादिष्ट 'दशहरी'

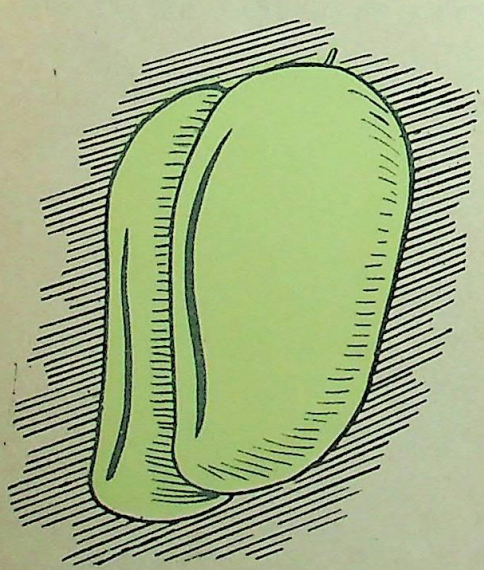

भारतीय कृषि अनुसंधान केन्द्र, सहारनपुर व वाराणसी के सर्वेक्षण से पता चला है कि आम बोये जाने वाले बागों का क्षेत्रफल ०·७९ से ०·५ हैक्टेअर है जो देश के औसत आम-उत्पादन का केवल ६२·८ प्रतिशत ही है। यह कमी केवल वैज्ञानिक पहुंच की कमी तथा आधुनिक तरीकों के अज्ञान का परिचायक है। गुट्टी द्वारा नयी किस्मों को विकसित कर दशहरी, लंगड़ा, चौसा आदि को लगाया जाय ताकि वे तीन वर्ष में ही फल देने लगें। प्रायः ऐसा देखा गया है कि पौधे दो वर्ष में एक बार ही फल देते हैं। इस दोष को दूर करने का भरसक प्रयास किया जा रहा है।

भंडारण एवं विपणन

आम का व्यावसायिक आकर्षण इसके फल की काफी समय तक उपलब्धि पर आधारित रहता है। ज्यादातर आम जून-जुलाई तक पूर्ण परिपक्वता प्राप्त कर लेते हैं। कच्चे आमों को जल्दी ही तोड़कर उन्हें कृत्रिम तरीकों से पकाने के बाद उपभोक्ताओं के पास बाजारों में भेज दिया जाता है। अतः फलों में सुगंध और स्वाद की बेहद कमी रह जाती है। कच्चे आमों को एथीलीन या एसीटिलीन से रंगीन बना दिया जाता है। अतः इस कुप्रवृत्ति की रोकने का प्रयास किया जा रहा है ताकि आमों को मई से अक्तूबर तक उपलब्ध कराया जा सके।

प्रायः बागों को ठेकेदारों के हाथ नीलाम कर दिया जाता है जो कच्चे आमों को तोड़कर उन्हें टोकरियों में भरकर कमीशन एजेन्टों के पास शहर में भेज देते हैं। उपभोक्ताओं के पास आम थोक अथवा फुटकर विक्रेताओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माध्यम से पहुंचता है जिसमें मार्ग की असावधानियों के कारण फलों के स्वाद में अन्तर आ जाता है जिससे उपभोक्ता ही नुकसान में रहता है अतः इसके लिए समुन्नत विधियों का स्तेमाल आवश्यक होता है। इसके लिए उगाही करने वालों को चाहिए कि वे आधुनिक वैज्ञानिक रीतियों से फलों का संचयन तथा भंडारण कर निजी वेयर हाउसों में फलों को रखें।

फलों के पकने से सम्बन्धित पर्याप्त जानकारी भी आवश्यक है। पकने के लिए २०° से २२° सें. तापमान उपयुक्त होता है। पकने के बाद रोगाणुओं के प्रभाव से सड़ना आरम्भ हो सकता है अतएव पके आमों को तुरन्त समाप्त कर देना ही लाभकर होता है। इसको रोकने के लिए आमों पर कमरे के तापमान पर मोम का ८ से १२ प्रतिशत गाढ़ा लेप चढ़ा दिया जाता है जिससे इनमें दो-तीन सप्ताह तक न सड़ने की क्षमता आ जाती है। अलफोन्सो, दशहरी तथा बतीशन किस्में डिब्बा-बन्दी (कैनिंग) के लिए उपयुक्त होती हैं। इन्हें छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर नीबू के तेजाब तथा अन्य द्रवों में डालकर रखा जाता है। इससे निर्यात क्षमता बढ़ जाती है किन्तु यांत्रिक भराव के लिए तथा काटने आदि के लिए आवश्यक यंत्रों के अभाव में दूरस्थ स्थानों पर ही इसके उद्योग स्थापित हैं।

आम के रस में चीनी मिलाकर ३६° सें. तापमान पर ईंटें बना ली जाती हैं। आम के विभिन्न पेय भी तैयार किये जाते हैं जिनमें सल्फर डाइआक्साइड को सुरक्षाकारक के रूप में तेस्माल किया जाता है। १०० ग्राम रस में १०० मिलिग्राम एसकार्बिक एसिड मिलाने से उसके रस का स्वाद ज्यों का त्यों बना रहता है। सोडियम बैंजोएट, सल्फर डाइआक्साइड

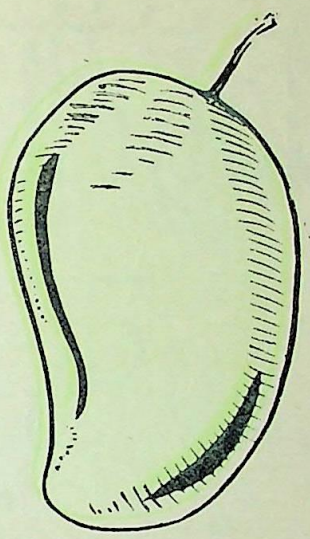

लखनऊ का मशहूर 'सफेदा'

में गूदे को रखकर सुस्वादु पेय बना लिया जाता है। अमरस के पापड़ बनाने के लिए चीनी तथा पोटैशियम मेटाबाइसल्फेट मिलाकर स्टेनलेस स्टील की चादरों पर ७५° से ८५° सें. पर रखकर सुखा लिया जाता है। इन्हें छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर बाजार में बेचने के लिए भेजा जाता है। आम के अन्य उत्पादों में आमान्न फ्लैक, आम्र पाउडर, टॉफी, जैम, पनीर, मक्खन, सिरका और शराब आदि हैं।

निर्यात

आम के विभिन्न उत्पादों का निर्यात भी काफी लाभप्रद है। संसार में आम के व्यापार को १०,००० टन आंका गया है जिसमें ७५०० टन ही केवल भारत से निर्यात होता है। फिलीपाइन्स, थाईलैण्ड आदि ३२०० टन आम हांगकांग और मलेशिया को भेजते हैं। यूरोप के बाजार में १९६७ में भारत से १२०० टन आम गया। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र, फ्रांस तथा इसरायल, केनिया आदि को भी आम भेजा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रमा का भू-विश्लेषण

विजयकान्त श्रीवास्तव

चन्द्रमा पर मानव की विजय ने हमारी अनेक कल्पनाओं को साकार कर दिया है। विज्ञान और तकनीक के इतिहास में यह प्रसंग चिरस्मरणीय रहेगा। अमरीकी चन्द्रयात्रियों द्वारा वहां से लायी गयी चन्द्र-शिलाओं तथा चन्द्र-धूलि के अध्ययन से नित नूतन रहस्योद्घाटन हो रहे हैं।

क्या चन्द्रमा पर जल है ?

यों तो चन्द्रमा से लाये गये उन नमूनों को अध्ययन के लिए अनेक प्रसिद्ध प्रयोग-शालाओं में भेजा गया है, परन्तु अमरीका की हाउस्टन स्थित प्रयोगशाला में विशेष अध्ययन हो रहा है। अभी तक के अध्ययनों से अनुमान लगता है कि चन्द्रमा पर जल का सर्वथा अभाव है। वहां अत्यन्त क्षीण गुरुत्वाकर्षण का होना भी इसका एक कारण माना जा रहा है। दूसरा अनुमान यह है कि सूर्य के प्रखर ताप ने वहां का जल-भण्डार कभी का सोख लिया होगा। यदि यह भी मानकर चलें (प्राचीन मान्यता के अनुसार) कि चन्द्रमा की उत्पत्ति पृथ्वी से हुई है, तो प्रश्न होगा कि क्या पृथ्वी का जल-अंश वहां किंचित भी न होगा ? सम्भव है, चन्द्र-तल की भीतरी तहों में वह जल-अंश हिम रूप में दबा पड़ा हो। यदि ऐसा भी होता तो शिलाखण्डों में कहीं तो उस जल के वाष्पीकरण अथवा घनीभूत हो जाने के कुछ चिह्न अवश्य मिलते। इन नमूनों के जो चित्र वर्णपट द्वारा लिये गये हैं उनसे भी ऐसी किसी मान्यता की पुष्टि नहीं हो पा रही है। अतः अभी तो यही मानकर चलना है कि चन्द्रमा पर जल का सर्वथा अभाव है।

चन्द्रमा की धूल-माटी

चन्द्रयात्रियों द्वारा लाये गये चित्रों से प्रतीत होता है कि चन्द्रमा की मिट्टी उनके पांवों में चिपकती थी। तो क्या मिट्टी गीली हो सकती है ? वहां पर जल का सर्वथा अभाव है, अतः यह उत्तर तो शंका का समाधान नहीं करता। अनुमान यह लगाया जा सकता है कि चन्द्रयात्री प्लास्टिक के जूते पहने हुए थे और वहां की मिट्टी सूखी होनी ही चाहिए, अतः घर्षण-विद्युत के कारण कुछ धूलि-कण उनके जूतों से चिपक गये होंगे। वहां की मिट्टी का अध्ययन करने पर उसमें हीलियम, जेनान तथा आर्गन आदि गैसों की उपस्थिति का अनुमान लगाया गया है।

वहां की मिट्टी उपजाऊ भी है या नहीं, इस पर कुछ प्रयोग किये गये हैं। डा० चार्ल्स वाल्किन शा ने एक प्रयोग में उस मिट्टी में पालक के कुछ बीज डालकर देखा। थोड़े ही दिनों में उससे ४ सेमी तक लम्बे अंकुर उग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये। उन अंकुरों को पृथ्वी की माटी में उत्पन्न अंकुरों की अपेक्षा सशक्त पाया गया। चन्द्र-माटी में वनस्पति के लिए कोई हानिकारक तत्त्व भी नहीं पाया गया। इसके अतिरिक्त उस मिट्टी में बोरान तथा मेलिब्डोनियम के भी धातु-तत्त्व पाये गये हैं जो वनस्पति के लिए लाभदायक हैं।

प्रश्न रह जाता है कि उपजाऊ होने पर भी जल के बिना चन्द्रमाटी का क्या उपयोग हो सकता है? यदि किसी प्रकार वहां जल की प्राप्ति सम्भव हो सके तब तो वहां कृषि भी व्यापक रूप से की जा सकेगी। सर्वप्रथम उत्पन्न वनस्पतियां वहां की दूषित वायु को सोख लेंगी और पुनः नयी फसल वहां पर प्राणवायु का संचार करेगी। यदि ऐसा सम्भव हो सके तो अन्तरिक्ष के अन्य पिण्डों के अध्ययन हेतु चन्द्रमा पर प्रयोगशाला बनाना सम्भव हो सकेगा।

चन्द्रशिलाओं में चमक क्यों

चन्द्रयात्रियों ने वहां की शिलाओं को चमकने वाली तथा चिकनी फिसलने वाली बताया है। प्रथम चन्द्र-आरोही आर्मस्ट्रांग

चन्द्रशिला का एक टुकड़ा (वजन लगभग एक किग्रा) परीक्षण किये जाने के लिए कांच के घेरे में बन्द है

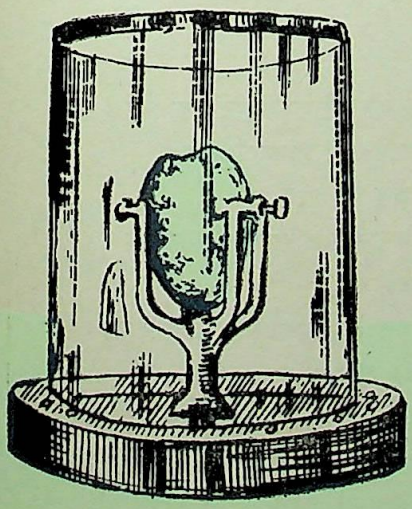

चन्द्रयात्री चन्द्रतल पर एक लेसर प्रयोग का फोटो ले रहा है

ने वहां अभ्रक तथा बेसाल्ट होने की सूचना दी है। अतः चन्द्र धरातल पर तो चमक अभ्रक के कारण हो सकती है, परन्तु शिलाओं की चमक का रहस्य अभी तक सुलझा नहीं है। यों तो उन शिलाओं में सीसे का भी अंश पाया गया है। इस सन्दर्भ में यह ज्ञातव्य है कि सीसा चमकने वाली धातु है। चन्द्रशिलाओं से चिपके हुए धूलिकणों के लिए अनुमान लगाये जा रहे हैं कि वे शिलाएं टूटी-घिसी कैसे होंगी। वायु-घर्षण वहां इसलिए सम्भव नहीं है कि वहां पर वायु है ही नहीं। एक सम्भावना यह हो सकती है कि ताप के तीव्र परिवर्तन तथा क्षीण गुरुत्वाकर्षण के कारण शिलाएं तीव्रतापूर्वक फिसलती होंगी, तब यह धूल बनती होगी।

चन्द्रमा पर ज्वालामुखी

चन्द्रमा पर जो बड़े-बड़े गड्ढे और दरारें हैं उनके लिए अनुमान है कि कदाचित ज्वाला-मुखी के प्रभाव से बने हों। वैसे चन्द्रयात्रियों को वहां कोई सक्रिय ज्वालामुखी नजर नहीं आया। सम्भव है, सब के सब निश्चेष्ट और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

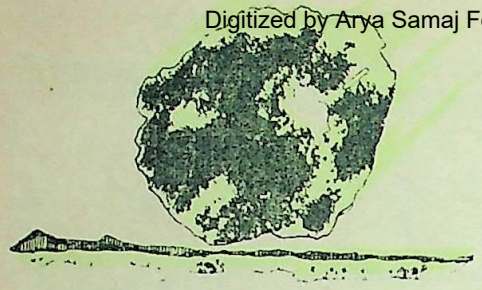

चन्द्रतल के गड्ढे ऐसी असंख्य उल्काओं के टकराने के कारण भी बने हो सकते हैं

बुझे हुए पड़े हों। यों भी ज्वालामुखी की क्रियाशीलता समाप्त हो जाने पर गड्ढे बन ही जाते हैं। अतः आज के उन गड्ढों से उन ज्वालामुखियों की उपस्थिति का तो अन्दाजा लगाया ही जा सकता है जो सृष्टि के आरम्भ में सक्रिय रहे होंगे। उन गड्ढों का दूसरा कारण उल्काओं का टकराना हो सकता है। अन्तरिक्ष में तो चिनगारियों की तरह असंख्य उल्काएं उड़ती ही रहती हैं। पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करते ही वे तीव्र घर्षण के फलस्वरूप जलकर भस्म हो जाती हैं, जिन्हें हम प्रायः ही टूटते तारे समझ कर देखते रहते हैं। चन्द्रमा पर वायुमण्डल का अभाव होने के कारण वे वहां के धरातल पर सीधी टकरा कर गड्ढे-दरारें बना देती होंगी।

कठोर धरातल, खनिज का भण्डार भी

चन्द्रयात्रियों ने अपनी विजय का झंडा गाड़ते समय वहां के धरातल को काफी कठोर पाया है। इसका कारण है वहां पर शिलाओं की प्रधानता। वहां से हमें सोना, चांदी, प्लेटिनम आदि कदाचित न मिल सकें, परन्तु सीसा तथा टिटेनियम जैसी बहुमूल्य धातुएं तो मिलने की आशा रखी ही जा सकती है। इसके लिए हमें अपने वैज्ञानिकों के और भी गहन अध्ययनों, प्रयोगों और उनके निष्कर्षों की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

अपोलो–१६ अभियान

चन्द्रमा की धूल मिट्टी तथा चट्टानों के नमूने पृथ्वी पर लाने के कार्यक्रम के अन्तर्गत अपोलो–१६ अन्तरिक्षयान के यात्री जॉन यंग व चार्ल्स ड्यूक चन्द्रमा के उच्च पठारी क्षेत्र डेस्कार्टेस पर २१ अप्रेल १९७२ को उतरे। अपनी तीन दिवसीय चन्द्रयात्रा के दौरान इन अन्तरिक्ष यात्रियों ने चन्द्र मिट्टी तथा चट्टानों के ९० किलोग्राम नमूने एकत्र किये। उल्लेखनीय है कि डेस्कार्टेस क्षेत्र का तापमान ८५° सेंटिग्रेड (१८५° फारनहीट) रहता है।

इन चन्द्रयात्रियों ने ये रिकार्ड स्थापित किये :

—अब तक के चन्द्रयात्रियों द्वारा पहुची हुई ऊंचाई से भी अधिक ऊंचाई तक चढ़े।
—मनुष्य द्वारा चन्द्रमा पर देखे गये सबसे गहरे ज्वालामुख में झांककर देखा।
—चन्द्रमा पर अब तक पाये गये प्रबलतम चुम्बकीय क्षेत्र को मापा।
—उस मिट्टी के नमूने लिये जो सृष्टि के आदिकाल से सूर्य की किरणों से अछूती रही है।
—चन्द्रतल पर सबसे अधिक समय (७१ घंटे २ मिनट) रहे।
—अपने चन्द्रयान से बाहर सबसे अधिक समय (२० घंटे १५ मिनट) व्यतीत किया।
—एक बार में सबसे अधिक समय (७ घंटे २३ मिनट) चन्द्रमा पर चले।
—चन्द्रमा पर सबसे तेज गति की।
—वर्तमान कार्यक्रम के अन्तर्गत अन्तिम चन्द्रयात्रा अपोलो-१७ द्वारा दिसम्बर १९७२ के लिए निर्धारित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

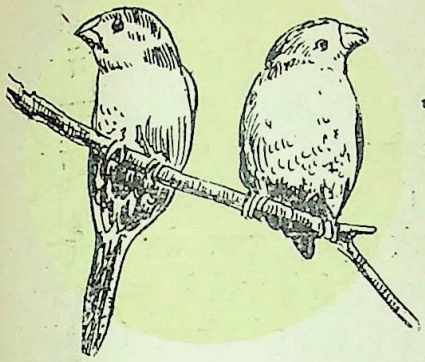

दूर देश के पंछी

विनोदचन्द्र विद्यालंकार

गरमी आने पर हम लोग पहाड़ों पर जाने की सोचते हैं—और सरदियों में नीचे उतर आते हैं। अपनी अनुकूलता-प्रतिकूलता देख हम एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवास (माइग्रेशन) कर लेते हैं। पक्षियों में यह प्रवृत्ति विशेष-रूप से पायी जाती है।

प्रति वर्ष वसन्त और शरद ऋतु में पृथ्वी के लाखों पक्षी बहुत-बहुत लम्बी यात्राएं निश्चित स्थानों पर और निश्चित अवधि तक करते हैं। सरदी के मौसम में हमारे देश में भी उत्तर या पश्चिमोत्तर देशों से आये हुए पक्षी-समूह दिखायी पड़ते हैं। ये पक्षी यहां सरदियां बिताकर पुनः अपने देश को लौट जाते हैं। हिमालय के पर्वत-शिखरों पर रहने वाले असंख्य पक्षी सरदियों में हिमाच्छादित पर्वत श्रृंखलाओं को छोड़कर निचले हिस्सों में आ बसते हैं। रूस, ब्रिटेन, जरमनी आदि देशों के पक्षी भी अपने-अपने अनुकूल स्थानों पर चले जाते हैं।

'छल्ला पद्धति'

पक्षी-प्रवास की यह विलक्षण प्रवृत्ति आश्चर्यजनक होते हुए भी सत्य है। इसका सही-सही पता लगाने के लिए लम्बे समय से अनेक देशों में 'छल्ला पद्धति' का प्रयोग किया जाता रहा है। इस पद्धति में पक्षियों के पंजों में एल्युमीनियम का (हलके होने के कारण) एक छल्ला लगा दिया जाता है और उस छल्ले पर नम्बर, शोध संस्था का नाम और पता लिखा रहता है। साथ ही उस पर यह भी निर्देश रहता है कि यदि यह पक्षी मृत या जीवित पकड़ा जाये तो प्राप्तकर्ता इसके पैर में बंधे हुए छल्ले को खोलकर सम्बद्ध संस्था के पास भेज दे और छल्ला प्राप्त करने की तारीख, स्थान, समय आदि की सूचना भी दे दे। अनेक पश्चिमी देशों में इस पद्धति द्वारा अनेक परीक्षण किये गये हैं।

भारत में बम्बई की बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी इसी प्रकार परीक्षण करने की योजना चला रही है। उन छल्लों पर इस सोसाइटी का नाम अंकित रहता है। साथ ही लोगों में इस बात का प्रचार कर दिया जाता है कि वे ऐसे छल्ला पहिने पक्षियों को जहां कहीं पायें, उनकी विस्तृत सूचना इस संस्था को भिजवा दें। विगत कुछेक वर्षों में इस सोसाइटी को इस विषय में अनेक प्रामाणिक आंकड़ों सहित विवरण प्राप्त हुए हैं।

इस प्रयोग के फलस्वरूप यह ज्ञात हुआ है कि भारत की कुछ **जंगली बत्तखें** साइबेरिया में अर्थात यहां से लगभग ४८०० किलोमीटर दूर पायी गयीं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

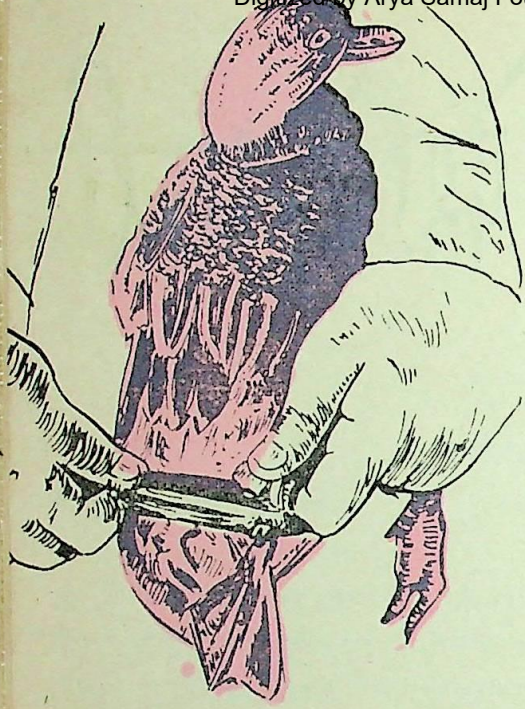

'छल्ला पद्धति'

एक बत्तख की टांग में छल्ला लगाया जा रहा है

प्रवास क्यों ?

पक्षियों के ऐसे प्रवास के अनेक कारण होते हैं। उदाहरणार्थ—ठंड की अधिकता, भोजन की कमी, सन्तानोत्पत्ति के लिए अनुकूल वातावरण का अभाव आदि। उत्तरी गोलार्ध के एकदम उत्तर में ठंड बहुत अधिक होती है। परिणामतः सरदियों में वहां पर खाद्यान्न का अभाव हो जाता है और प्रायः ही पानी भी, जम जाने के कारण, दुर्लभ हो जाता है। ऐसी अवस्था में पक्षियों को अपने दाने-पानी की खोज में सामूहिक रूप से किसी अन्य स्थान पर जाने के लिए बाध्य होना पड़ता है। वे सरदियों के आने से पहले ही ध्रुवों एवं शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों को छोड़कर अपेक्षाकृत अधिक गरम इलाकों में भूमध्य रेखा की ओर स्थानान्तरित हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, रूस में एक पक्षी होता है **रूक**। यह पक्षी वसन्त एवं गरमियों का मौसम तो मध्य रूस में बिताता है, किन्तु जाड़ों में बर्फ जम जाने पर यह दक्षिणी यूरोप तथा उत्तरी अफ्रीका के देशों में चला जाता है। इसी प्रकार **मारटिन, अबाबील** आदि अनेक पक्षी अन्य गरम देशों में चले जाते हैं।

इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि पक्षी केवल सरदी से बचने के लिए ही प्रवास करते हैं। बल्कि वे पूर्व-पश्चिम दिशाओं की ओर उड़कर अपने लिए अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल एवं सुविधाजनक तापमान वाले देशों में प्रवास करते हैं। इसीलिए हमारे देश में ठंड के दिनों में बड़ी संख्या में प्रवासी पक्षी दिखायी पड़ते हैं। ये सभी पक्षी उत्तरी कटिबन्ध के देशों से आते हैं। इनमें जरमनी के **सफेद क्रौंच**, हंगरी की **गुलाबी सारिका** (मैना) आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त **खंजन, भारद्वाज, हंस, सारस, चक्रवाक** आदि भी ऐसे ही प्रवासी पक्षी हैं।

उत्तरी गोलार्ध में वसन्त एवं गरमी का प्रभाव होने पर पक्षी अपने स्थान से उड़कर

अबाबील

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम अक्षांश की ओर चले जाते हैं। दक्षिणी गोलार्ध में दशा बदल जाती है और पक्षी दक्षिणी सरदी से बचने के लिए उत्तर की ओर उड़ानें भरते हैं। बहुत-से पक्षी तीव्र सरदी से बचना चाहते हैं और वे आर्द्र जलवायु से प्रभावित इलाकों में चले जाते हैं। ग्रीष्म के आगमन पर तथा पेड़ों के हरा-भरा हो जाने एवं कीट-पतंगों से भर जाने पर वे पुनः अपने मूल स्थान को लौट आते हैं। गरमियों के समाप्त होते-होते बच्चे बड़े हो जाते हैं और पहली वसन्त के आने तक वे भी दक्षिण-यात्रा के लिए तैयार हो जाते हैं। बहुत-से पक्षी ऐसे भी हैं जो अपनी जन्मभूमि में बहुत कम समय बिताते हैं। उदाहरणार्थ, **रोजी पैस्टर** नामक पक्षी का जन्म मध्य एशिया में होता है। मई में यह पक्षी भारत में रहता है और साधारणतया अगस्त में अपनी जन्मभूमि में लौट आता है। बहुत-से पक्षी इससे भी कुछ अधिक समय तक भारत में रहते हैं। वे मार्च में आकर सितम्बर तक लौटते हैं।

धुर उत्तर से धुर दक्षिण !

पक्षी अपनी यात्राओं में बड़ी लम्बी अकल्पनीय दूरियां तय कर लेते हैं। मार्ग में

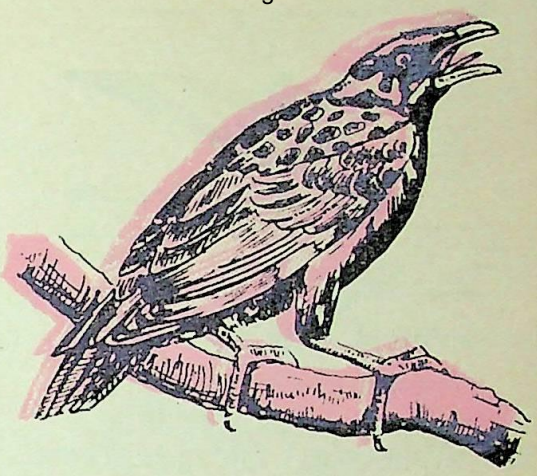

भारतीय पहाड़ी मैना

चाहे समुद्र हों, पहाड़ हों, जंगल हों, या दुर्गम पथ, कोई भी इनकी यात्रा में बाधा नहीं डाल सकता। ये स्वच्छन्द आगे बढ़ते जाते हैं। हजारों किलोमीटर की दूरियां ये तय कर लेते हैं। **आर्कटिक टर्न** नामक पक्षी प्रति वर्ष उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के बीच लगभग ३८,००० किलोमीटर की यात्रा करता है जो सबसे लम्बी प्रवास-यात्रा है।

इसके विपरीत, बहुत-से पक्षी थोड़ी ही दूरी की यात्रा करते हैं। बम्बई में **पीलक** और **पतेना** या **पतंग** नामक पक्षी मानसून में

यूरेशिया का राजहंस (वयस्क नर)

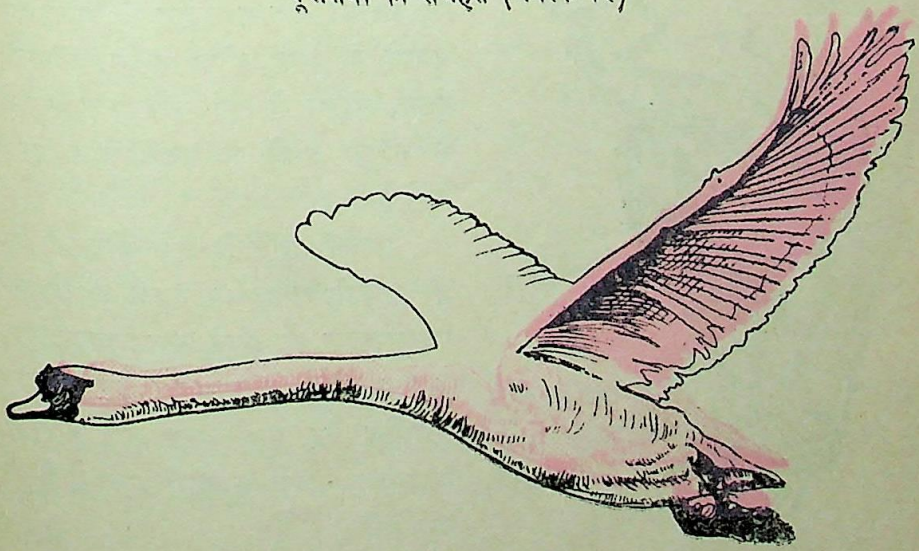

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

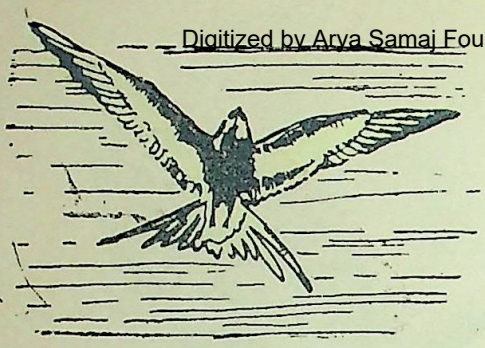

आर्कटिक टर्न प्रतिवर्ष लगभग ३८,००० किलोमीटर की प्रवास-यात्रा करता है

शहर छोड़कर दक्षिणी पठार या मध्य भारत तक ही जाते हैं और सितम्बर के आरम्भ में वापस आ जाते हैं। इसी प्रकार का एक पक्षी है **कठफोड़वा**। उसमें इतनी शक्ति नहीं होती कि वह एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक की लम्बी यात्रा करे। यह पक्षी हिमालय के उच्च शिखर पर तब तक रहता है जब तक बर्फ की ऊंचाई उसकी रुचि के अनुकूल नहीं हो जाती। जब बर्फ पिघलने लगती है तो यह पक्षी एक उड़ान में नीलगिरि पर्वत (दूरी लगभग २४०० किलोमीटर) पर पहुंच जाता है। इसी प्रकार

कठफोड़वा : काठ को फोड़ना जिसकी प्रवृत्ति है

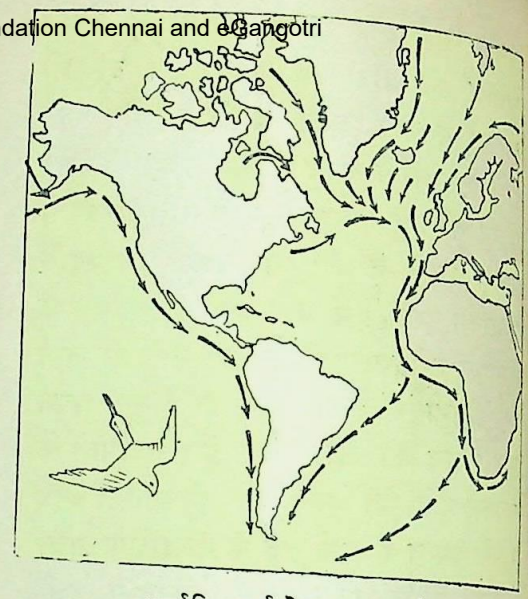

आर्कटिक टर्न के प्रवास-मार्ग

का एक और पक्षी **स्वर्णिम पाणविक** है। इस पक्षी का जन्म अलास्का और उत्तरी-पूर्वी साइबेरिया में होता है। वहां पर जब भयंकर शीत का प्रकोप होता है तो यह पक्षी लगभग ३२०० किमी की दूरी तय करके भारत आ जाता है। जापान में जन्म लेने वाला **पंकरीर** पक्षी भी ऐसा ही प्रवासी पक्षी है।

यात्रा में दिशा-ज्ञान

कुछ पक्षी रात-दिन उड़ते रहते हैं और कुछ केवल रात में ही। रात-दिन उड़ने वाले इन पक्षियों के पास उड़ान की दिशा का पता लगाने के लिए कोई दिक्सूचक यन्त्र नहीं होता, बल्कि वे सूर्य, चन्द्र एवं अन्य नक्षत्रों के सहारे अपने अभीष्ट स्थान पर पहुंच जाते हैं।

छल्ला पद्धति से एक और रोचक तथ्य जो सामने आया वह यह है, कि ये पक्षीगण प्रवास-काल में अपने मूल निवास स्थान को नहीं भूलते। वे प्रति वर्ष अपने प्रवास की समाप्ति पर पुनः वहीं लौट आते हैं और यथासंभव अपने पुराने भवनों में ही घोंसले बनाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय सारस

चहचहाती बुलबुल जो साहित्य में अमर है

प्रश्न हो सकते हैं कि यात्राकाल में पक्षियों का उड़ानवेग क्या होता है? वे एक दिन में कितनी यात्रा तय कर लेते हैं? और वे कितनी ऊंचाई तक उड़ान भर सकते हैं? अनुमान है कि छोटे पक्षी एक घंटे में लगभग ३० किलोमीटर और बड़े पक्षी ८० किलोमीटर तक की दूरी तय कर लेते हैं। इन पक्षियों की दैनिक उड़ान की औसत अवधि ८ घंटे होती है। इस प्रकार गणना करने पर विदित होता है कि ये पक्षी एक दिन में क्रमशः २४० और ६४० किलोमीटर की यात्रा कर सकते हैं। यह भी पाया गया है कि जब पक्षियों को बड़े-बड़े समुद्र पार करने होते हैं तो अनेक पक्षी-समूह बिना रुके लगातार ३६ घंटे तक उड़ सकते हैं।

साधारणतया, जहां पर ऊंचे-ऊंचे पर्वत-शिखरों को नहीं लांघना होता वहां पक्षी २०० से ४०० मीटर तक की ऊंचाई तक ही उड़ते हैं। किन्तु कुछ पक्षी ऐसे भी देखे गये हैं जो १५०० से १८०० मीटर तक ऊंची उड़ान भी भर सकते हैं और कभी-कभी यह ऊंचाई ४२०० मीटर तक पहुंच जाती है।

प्रवास करने वाले पक्षियों के प्रतिशत के विषय में अभी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु यह अनुमान लगाया गया है कि यूरोप और दक्षिणी एशिया में प्रवजन करने वाले पक्षियों की संख्या लगभग ४० प्रतिशत है। ब्रिटेन में गायक पक्षियों की ६८ किस्मों में से २२ किस्में प्रवासी हैं तथा भारत में पाये जाने वाली १२०० किस्मों में से ३०० से अधिक किस्में सरदियों में विदेशों से आती हैं।

स्वास्थ्य के लिए मधुमक्खियां पालिये

यूक्रेन (सोवियत रूस) के मधुमक्खी पालने वालों का कथन है कि प्रचुर मात्रा में मधु के सेवन से तो उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता ही है, मधुमक्खी के डंक मारने से भी उनके स्वास्थ्य पर लाभकारी प्रभाव होता है। मधुमक्खी का डंक लगने से उन लोगों की आरथ्राइटिस तथा जोड़ों की अन्य बीमारियां दूर हो जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायुमण्डल के अद्भुत रहस्य

(३)

कुलदीप चड्ढा, एम.एस-सी.

जिन साहसिक उड़ानों की हमने गत लेख में चर्चा की थी उनके दो ध्येय थे। एक तो धरती से अधिकाधिक ऊंचाइयों को छूने का श्रेय प्राप्त करना और दूसरे इन ऊंचाइयों पर वायु के स्वभाव की पड़ताल करना। इस क्रम में पतंगें लगभग १० किमी तक ऊपर जा चुकी हैं, वायुयान १७ किमी तक, मानुषित गुब्बारे २२ किमी तक और अमानुषित गुब्बारे ४० किमी तक। इन सभी प्रकार के साधनों में विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक यंत्र भी वायुमंडल की खोज के लिए विभिन्न ऊंचाइयों तक भेजे जा चुके हैं। निकट अतीत तक इनमें से सर्वाधिक उपयोगी साधन गुब्बारे सिद्ध हुए हैं। पर सन १९४७ के बाद से संसार के अनेक देशों ने हजारों की संख्या में राकेट भी वायुमंडल की ऊंचाइयों पर भेजे हैं।

इन सभी प्रकार के साधनों की सहायता से वायुमंडल की रासायनिक बनावट के बारे में जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया जा चुका है, उसका विवरण हम पहले ही दे चुके हैं। अब आइये, कुछ अन्य परिणामों के बारे में परिचय प्राप्त करें।

वायुमंडल का दबाव

हम पहले बतला आये हैं कि समुद्र-तल पर हवा के एक घन मीटर आयतन का भार लगभग १·३ किलोग्राम होगा और पृथ्वी के प्रत्येक वर्ग सेंटिमीटर क्षेत्रफल पर पड़ने वाले हवा के भार का दबाव लगभग एक किलोग्राम है। इस हिसाब से, हमारे वायुमंडल की ऊंचाई कोई ८ किमी होगी। लेकिन ऊपर के विवरण से प्रकट हो गया होगा कि वायुमंडल की खोज करने वाले सभी साधन इससे कहीं ऊंचे स्तरों को छू चुके हैं। तो क्या ये सभी साधन वायुमंडल को भेद कर अन्तरिक्ष में जा पहुंचे थे?

जी नहीं!

वास्तव में, ज्यों-ज्यों हम वायुमंडल में ऊंचे उठते जाते हैं, हवा अधिकाधिक विरल होती जाती है। इसके अनुसार, हवा के प्रति घन मीटर का भार भी कम होता जाता है। जहां समुद्र-तल पर एक घन मीटर हवा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भार १·३ किलो अर्थात १३०० ग्राम होता है, २० किमी ऊंचाई पर यह ९० ग्राम रह जाता है और ४० किमी पर केवल ४ ग्राम। इस प्रकार, जो हवा ठोस धरती से लिपटी-चिपटी रहती है, वह बहुत घनी होती है। समुद्र-तल से केवल ५ किमी की ऊंचाई तक हवा का आधा भार समाया हुआ है और १५ किमी तक कुल भार का ९० प्रतिशत।

इन संख्याओं से ऊंचाई के साथ हवा के विरल होने के क्रम का कुछ आभास मिल जाता है। पर वैज्ञानिक इस गुणात्मक तरीके के बजाय गणनात्मक विवरण में अधिक विश्वास रखते हैं। अतः किसी स्थल पर हवा के स्तंभ के भार को उन्होंने इस गणना का आधार माना है और इसे वायुमंडल का दबाव अथवा वायुदाब की संज्ञा दी है।

हमारी धरती ऊंची-नीची है। अतः हवा का दबाव विभिन्न स्थानों पर प्रायः भिन्न-भिन्न होता है। उदाहरण के तौर पर, हिमालय की सबसे ऊंची चोटी ऐवरेस्ट पर हवा का दबाव समुद्र-तल की अपेक्षा केवल एक-तिहाई है। इसी प्रकार लगभग ३० किमी पर यह तीन हजारवां भाग और २२० किमी पर सौ करोड़वां भाग रह जाता है।

किसी स्थल पर हवा के दबाव की मात्रा अनेक क्रियाओं-प्रक्रियाओं के संबंध में बहुत महत्त्वपूर्ण है। अतः इसे मापने के लिए आजकल अनेक प्रकार के उपकरण प्रयोग किये जाते हैं। पर पहले पहल इसे मापने के यंत्र का आविष्कार प्रसिद्ध वैज्ञानिक गैलीलियो के शिष्य टोरीसेली ने १६४३ में किया। मूल रूप में यह यंत्र कांच की एक ८५-९० सेंटिमीटर लम्बी नली होती है जिसको पारे से भरकर, पारे से ही भरे एक खुले बरतन में उलटा लटका दिया जाता है—इस एहतियात से कि इस दौरान नली में बाहर से हवा न आने पावे। बरतन में लम्बाकार लटकने पर नली में पारे का स्तर गिरकर ७५-७६ सेंटिमीटर की ऊंचाई पर स्थिर हो जाता है।

पारे के स्तंभ की यही ऊंचाई स्थल विशेष पर हवा के दबाव का परिमाण होता है, क्योंकि किसी भी तरल तत्त्व की स्थिरता उन बलों के संतुलन पर निर्भर करती है जो इस पर क्रियाशील हों। जिस स्थल पर नली का पारा बरतन के पारे के सम्पर्क में आता है, वहां एक ओर हवा के स्तम्भ का भार पड़ता है और दूसरी ओर नली के पारे के स्तम्भ का क्योंकि इन दोनों बलों के प्रभाव में पारा स्थिर है, इसलिए पारे के स्तम्भ की लम्बाई का भार हवा के समूचे स्तम्भ के भार के बराबर है। ऊंचाई पर हवा के स्तम्भ का भार कम होता है, अतः उसे सन्तुलित करने वाले पारे के स्तम्भ की लम्बाई भी कम होती है। इस प्रकार, किसी भी स्थल पर हवा के दबाव का अनुमान उक्त यंत्र में पारे के स्तम्भ की ऊंचाई से मिल सकता है। इस ऊंचाई को प्रायः मिलिमीटरों में प्रकट किया जाता है।

साथ के चित्र में वायुमंडल की ऊंचाइयों पर गुब्बारों की सहायता से मापे गये वायुदाब के आंकड़े प्रदर्शित हैं।

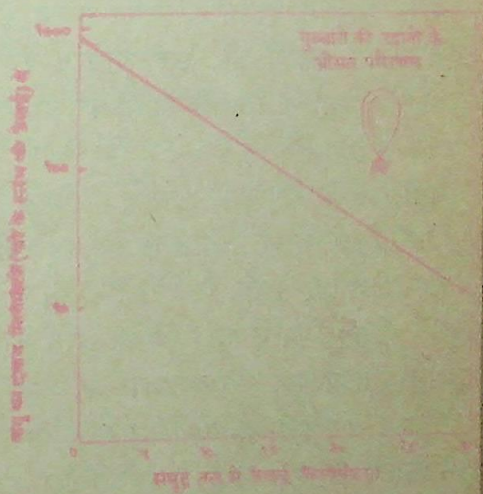

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस चित्र से प्रकट होता है कि ऊंचाई के साथ हवा के दबाव में कमी रेखानुपात से न होकर लघुगणक (लॉगरिथ्म) के अनुपात से होती है। इसका अभिप्राय यह है कि ऊंचाई में समान वृद्धि होने पर, दबाव में कमी समान परिमाप से न होगी, प्रत्युत कमी में गुणनांक समान होगा। उदाहरण के लिए, यदि समुद्र-तल से 'क' किमी के अन्तर पर दबाव आधा रह जाता है तो '२क' की दूरी पर चौथाई भर रह जायगा।

हवा के दबाव को मापने वाले यंत्र को **बैरोमीटर** कहते हैं। आजकल सुविधा के लिए अनेक आकार-प्रकार के बैरोमीटर प्रयोग में लाये जाते हैं तो भी तुलना के लिए अथवा शुद्ध परिणाम प्राप्त करने के लिए, टोरीसैली के मूल यंत्र का संशोधित रूप ही प्रयोग किया जाता है।

हमने ऊपर प्रकट किया था कि किसी स्थल पर मापे गये हवा के दबाव का मूल कारण, उस स्थल के ऊपर मंडराने वाले वायु के स्तंभ के भार का दबाव होता है। अब प्रश्न उठ सकता है कि इस स्तंभ की ऊंचाई क्या है ? दूसरे शब्दों में हमारे वायुमंडल की कुल ऊंचाई कितनी है ?

वायुमंडल की ऊंचाई

आरम्भ में हमने समुद्र-तल पर पड़ने वाले हवा के दबाव के हवाले से यह ऊंचाई ८ किमी आंकी थी, इस आधार पर कि वायु की सघनता सभी स्थलों पर समान है। अब जबकि हम जान गये हैं कि स्थिति ऐसी नहीं, बल्कि ऊंचाई के साथ हवा विरल होती जाती है, तो वायुमंडल की ऊंचाई कहीं अधिक होनी चाहिए। पर, कितनी ?

इस परिमाण को निश्चित करने के लिए मनुष्य चिरकाल तक अटकलों से काम लेता रहा। पर इस शती के प्रारम्भ में कुछ विद्वानों ने एक नया निश्चयात्मक सुझाव दिया। उनके अनुसार, वायुमंडल के कारण प्रकृति में अनेक क्रियाएं प्रकट होती हैं। वायुमंडल की ऊंचाई वहीं तक समझनी चाहिए, जहां तक ये क्रियाएं दिखायी दें। उदाहरण के लिए, हवा का एक प्रभाव है तेज चलने वाले पदार्थों में रगड़ से गर्मी पैदा करना। हमारे वायुमंडल में से अनेक बार उल्काएं गुजरती हैं। इनमें वायुमंडल की रगड़ के कारण इतनी गर्मी पैदा होती है कि वे चमकीले तारों के समान दिखायी देते हैं। धूमकेतुओं के प्रसिद्ध खोजी हैली ने १७१४ में काफी पड़ताल के बाद प्रकट किया कि यह क्रिया धरती से लगभग ७० किमी की ऊंचाई तक भी देखी जा सकती है। अतः वायुमंडल कम से कम ७० किमी गहरा तो अवश्य होगा। (बाद के अवलोकनों से ज्ञात हुआ कि यह क्रिया १५० किमी तक देखी जा सकती है।) इसके अतिरिक्त, गोधूलि ७५ किमी तक देखी जा चुकी है। एक अन्य क्रिया को जलवायु के जानकार निरभ्र बादल की संज्ञा देते हैं। इस विषय पर कुछ विस्तार से बाद में कहा जायगा। यहां तो हमारा केवल इतना ही कहना है कि वायुमंडल में प्रकट होने वाली यह क्रिया ८५ किमी तक देखी जा चुकी है।

पिछली शती के आरम्भ से आकाश में कई बार एक विचित्र-सी क्रिया देखी गयी। यह क्रिया प्रायः ध्रुव प्रदेशों में देखी जाती है और इसे मेरु-ज्योति की संज्ञा दी जाती है। यह क्रिया वायुमंडल में ऊंचाइयों पर रंग-बिरंगी झालरों के रूप में प्रकट होती है। आजकल यह काफी निश्चित रूप से माना जाता है कि इस क्रिया का कारण है पृथ्वी के बाहर से आने वाले विद्युत स्वभाव के कण, जो वायुमंडल के कणों में विक्षोभ पैदा करके ये विभिन्न प्रकार के आलोक उत्पन्न करते हैं। इस शती के प्रारम्भ तक ये क्रियाएं १५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किमी तक देखी गयीं पर आज तक के रिकार्ड में ये ११०० किमी तक देखी जा चुकी हैं। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि वायु-मंडल कम से कम ११०० किमी गहरा अवश्य होगा।

इधर राकेट और कृत्रिम उपग्रहों की परम्परा के दौरान अनुभव किया गया कि वायु का प्रभाव इससे भी कहीं अधिक ऊंचाई तक फैला होगा। कुछ वर्ष पूर्व खोजियों ने ऐसी मेखलाओं का आविष्कार किया है जो धरती से २५,००० किमी की दूरी पर विद्यमान हैं। पर जहां एक ओर ये मेखलाएं हमारे वायुमंडल का अंश मानी जाती हैं, वहां दूसरी ओर, ऐसा मानने के भी अनेक कारण हैं कि इनमें सूर्य के कण भी आते रहते हैं। अतः इस बारे में दो मत आसानी से हो सकते हैं कि ये मेखलाएं पृथ्वी का अंश हैं अथवा सूर्य का।

जरा गहराई से विचारा जाय तो स्थिति कुछ इस प्रकार है : हमारा वायुमंडल क्रम से विरल होता-होता ऐसी स्थिति में पहुंच जाता है, जहां इसका अन्तः-तारीय प्रान्तर् अथवा अन्तरिक्ष से कोई भेद नहीं रहता। अतः यह कहना कठिन ही नहीं प्रायः असंभव ही है कि वायुमंडल कहां समाप्त होता है और अन्तरिक्ष कहां शुरू होता है।

ऊंचाई और तापमान

गुब्बारों और राकेटों ने ऊंचाई के साथ हवा के दबाव के अतिरिक्त उसके तापमान में भी कमी का अनुभव किया। हवा के दबाव में ऊंचाई के साथ गिरावट तो आसानी से समझ में आ सकती है, क्योंकि पृथ्वी का आकर्षण दूरी के साथ कम होता जाता है। अतः वायु के कणों को भी अपने साथ चिपटाये रखने की पृथ्वी की क्षमता, अन्तर के साथ कम होती जाती है; यहां तक कि एक सीमा के बाद यह आकर्षण नहीं के

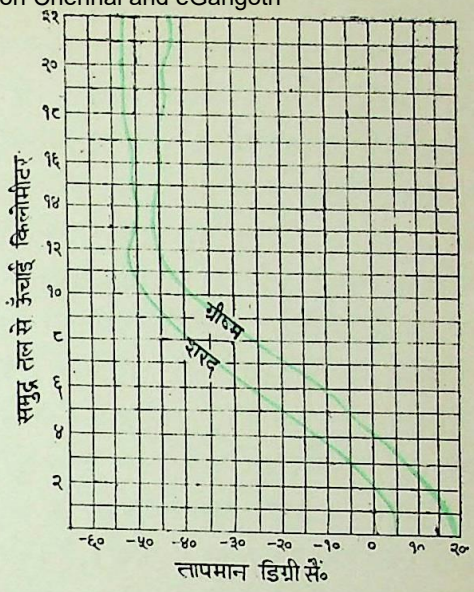

ग्रीष्म तथा शरद ऋतु में गुब्बारे द्वारा मापा गया, वायुमण्डल की ऊंचाइयों पर, ताप में परिवर्तन

बराबर रह जाता है। पर तापमान में गिरावट का कारण इतना सरल नहीं। अतः इसको जानने के लिए मनुष्य ने काफी समय लिया। पर अब यह प्रायः सर्वविदित है। वास्तविकता यह है कि सूर्य की किरणों की गरमी सोखकर गरम होने की क्षमता ठोस कणों में अधिक है और गैसीय कणों में कम। हमारी पृथ्वी ठोस पदार्थों से बनी है। इन्हीं पदार्थों के कण हमारी पृथ्वी के गिर्द वायुमंडल की निचली परतों में समाये रहते हैं। सूर्य की गरमी से पृथ्वी तथा ये कण जल्दी गरम हो जाते हैं। जलवाष्प और कार्बन डाइआक्साइड के कण भी इस क्रिया में सहयोग देते हैं। ऊंचाई पर धूल, जलवाष्प और कार्बन डाइ-आक्साइड आदि के कण क्रम से कम होते जाते हैं। अतः ऊंचाई पर गरमी कम होती जाती है। गुब्बारों की उड़ानों से इस कमी का परिमाण भी मापा गया है। औसतन, प्रति किलोमीटर के बाद तापमान ५°-६° सेंटिग्रेड कम हो जाता है। ऊंचाई के साथ तापमान के कम होने को एक वैज्ञानिक राशि 'क्षय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर' (लैप्स रेट) से प्रकट होते हैं। लगभग २ से ४ किमी तक इस राशि का परिमाण ५·६° सें. है और ६ किमी पर ७·१° सें.

ऊंचाई पर तापमान कम होने का अनुभव हम अपने पृथ्वी के जीवन में भी कर चुके होंगे। ज्योंही ज्येष्ठ-आषाढ़ की गरमी से हमारा सामना होता है, हम पहाड़ी स्थानों की राह पकड़ते हैं। पर, क्यों? क्योंकि यह सर्वविदित है कि पहाड़ों पर अपेक्षतया ठंड होती है। इस सरदी का कारण पत्थरों के वे टीले नहीं जिनका हमें पहाड़ों पर प्रायः ही दर्शन होता है। इसका वास्तविक कारण इन पहाड़ी स्थानों की समुद्र-तल से ऊंचाई है। जो स्थान समुद्र-तल से जितनी ही अधिक ऊंचाई पर होगा, वह प्रायः उतना ही अधिक ठंडा होगा। पर प्रश्न उठता है, क्या तापमान कम होने का यह क्रम निर्बाध रूप से चलता रहता है?

इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए ही द बोर्ते ने सन् १८९८ में आकाश की ओर ५८१ गुब्बारे छोड़े। इनसे जो जानकारी प्राप्त हुई, उससे इस विद्वान ने अनुमान लगाया कि ऊंचाई बढ़ने पर पहले तो तापमान कम होता जाता है, पर एक विशेष ऊंचाई के बाद यह स्थिर हो जाता है। जिस प्रान्तर् में तापमान स्थिर रहता है, उसे विज्ञान के साहित्य में 'समतापीय प्रदेश' (आइसोथर्मल रीजन) की संज्ञा प्रदान की गयी। इस प्रदेश का तापमान प्रायः शून्य (अर्थात् पानी जमने के तापमान) से भी ५५° सें. नीचे है। उक्त गुब्बारे अधिक से अधिक १५-१६ किमी तक जा पाये थे। अब वैज्ञानिकों ने जिज्ञासा प्रकट की कि इस प्रदेश के बाद तापमान कैसे बदलता होगा?

१९२२ के करीब आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रो. लिंडमन और डा. डावसन ने उल्काओं की द्युति का निरीक्षण करके निर्धारित किया कि जिस प्रान्तर् से वे गुजरती हैं वह समतापीय प्रदेश से कहीं अधिक गरम है। इस निष्कर्ष के अनुसार, ६०-६५ किमी की ऊंचाई पर तापमान लगभग ३०° सें. होगा। कहना न होगा कि गरम प्रदेशों में इतना तापमान प्रायः समुद्र तल पर होता है।

पहले तो इस परिणाम को संदेह की दृष्टि से देखा गया, पर संयोग से उन्हीं दिनों एक रोचक प्रयोग शृंखला का भी ऐसा ही परिणाम निकला।

ध्वनि तरंगों का रोचक प्रयोग

जिस प्रयोग शृंखला का यह परिणाम निकला, उसकी नींव बहुत पहले पड़ चुकी थी। १९वीं शताब्दी के अन्त में अनुभव किया गया कि जब विशाल तोपें दागी जाती हैं, तो कई बार कुछ किलोमीटरों के बाद उनकी आवाज सुनायी देना बंद हो जाती है, पर फिर अनेक किलोमीटर के बाद दोबारा सुनायी पड़ने लगती है। सन् १९०१ में इंगलैंड की महारानी विक्टोरिया के निधन पर जब तोपें दागी गयीं तो उस समय भी ऐसा प्रभाव लक्षित किया गया था। इसी प्रकार प्रथम महायुद्ध के दौरान १९१७ में इंगलैंड के सिलवरटन नामक स्थान पर शस्त्रागार में बारूद फटने के कारण एक भयानक धमाका हुआ, जिसकी आवाज दूर-दूर तक सुनायी दी। यह तो स्वाभाविक ही था कि घटनास्थल के करीब धमाका जोर से सुनायी देता। लेकिन आश्चर्य तब हुआ जब बीसियों किलोमीटरों तक सुनायी न देने के बाद पुनः यह धमाका दूरस्थ देशों में साफ-साफ सुनायी दिया।

लड़ाई के कारण, तत्काल तो इस विचित्र अनुभव की आगे पड़ताल न की जा सकी, पर युद्ध के बाद इसका अवसर दुगुनी सुविधा के साथ उपलब्ध हुआ, क्योंकि युद्ध के लिए इकट्ठे किये गये बारूद के अनन्त भंडारों को ठिकाने लगाना एक समस्या बन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी थी। अतः यूरोप तथा इंगलैंड के कई स्थानों पर, बारूद के विपुल भंडारों को जला कर भीषण धमाके पैदा किये गये। साथ ही प्रयोग के क्षेत्रों के चारों ओर दूर-दूर तक धमाके की ध्वनि ग्रहण करने के लिए यंत्र लगा दिये गये। मौकों पर तैनात वैज्ञानिकों को, कार्यक्रम तथा समय आदि की ठीक-ठीक सूचना देकर, परिणामों को पूरी वैज्ञानिक शुद्धता से प्राप्त करने के सभी उचित प्रबंध किये गये। ये प्रयोग १९२३ से १९३० के बीच किये गये। सभी परीक्षणों में परिणाम प्रायः समान निकला। ध्वनि के स्रोत अर्थात धमाके स्थल के गिर्द एक ऐसा क्षेत्र था, जहां ध्वनि सुनायी देती थी, पर बाद में क्रम से कम होती हुई इतनी क्षीण हो जाती थी कि उसे सुनना असम्भव-सा हो जाता था। इस क्षेत्र को साथ के चित्रों में 'क' से प्रदर्शित किया गया है। इस क्षेत्र के गिर्द एक ऐसा क्षेत्र 'ख' था जो निर्वाक् था। उसके बाद फिर एक क्षेत्र 'ग' शुरू हो जाता था, जहां आवाज पुनः सुनायी देती थी। यह क्षेत्र काफी विस्तृत था पर इसमें आवाज काफी समय के बाद पहुंचती थी। इस क्षेत्र की केन्द्र से दूरी कोई २०० किमी के करीब थी। कई बार तो 'ख' और 'ग' की भांति दो अन्य समान क्षेत्र 'घ' और 'ङ' भी देखे गये।

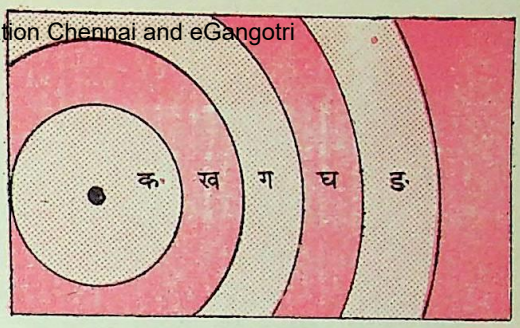

धमाके के क्षेत्र के गिर्द श्रव्यता तथा अश्रव्यता के क्षेत्र

इस समूचे ब्योरे को हासिल करके अब वैज्ञानिकगण इस विचार में व्यस्त हो गये कि इस विचित्र क्रिया का कारण क्या हो सकता है ?

ध्वनि की तरंगें धरती के साथ-साथ चलने में समर्थ नहीं, क्योंकि पृथ्वी का धरातल गोल है। अतः कुछ अन्तर के बाद ध्वनि पहुंचने में जितना समय लगा, उस पर विचार करते हुए यह कल्पना की गयी कि यहां ध्वनि आकाश की किसी ऊंची परत से प्रतिफलित होकर पहुंची होगी। पर ध्वनि के नियमों पर विचार करने से यही निष्कर्ष निकला कि ऐसा तभी सम्भव है जब वायुमंडल में ऊंचाई पर कोई अधिक तापमान की परत हो। क्षेत्र 'ग' तक ध्वनि पहुंचने के समय की गणना से, इस कल्पित क्षेत्र की ऊंचाई की

ध्वनि तरंगों का प्रचलन और 'गर्म क्षेत्र' से प्रत्यावर्तन जिससे श्रव्यता-अश्रव्यता के क्षेत्र बनते हैं

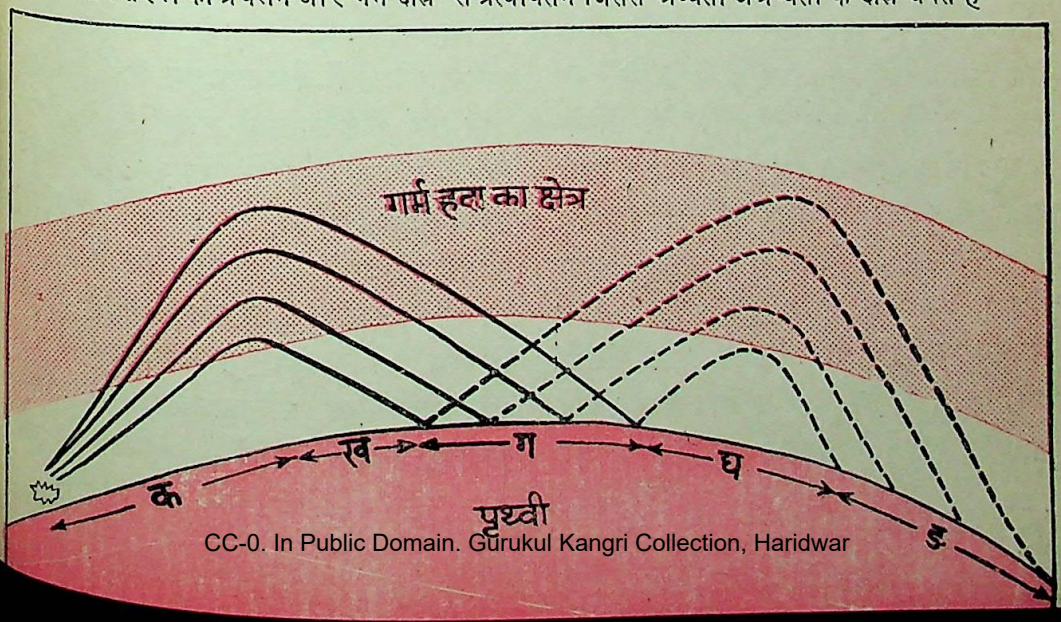

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी गणना की गयी। एक वैज्ञानिक विपुल के अनुसार, यह ऊंचाई ४० किमी थी और यहां का तापमान १०° से २०° सेंटिग्रेड के बीच था।

इन प्रयोगों की परम्परा ने डॉवसन के इस अनुमान का समर्थन किया कि वायुमंडल में काफी ऊंचाई पर एक ऐसा क्षेत्र है जो बहुत गरम है।

ध्वनि तरंगों ने वायुमंडल के उक्त रहस्य को खोलने में जो सहयोग दिया, उससे प्रभावित होकर वैज्ञानिकों ने उनसे अधिकाधिक काम लेना शुरू कर दिया। दूसरे महायुद्ध के बाद भी उक्त प्रकार के प्रयोग पुनः लोकप्रिय हो गये। जहां पहली बार वे एक रहस्य को सुलझाने में कारगर सिद्ध हुए थे, इस बार उनसे वायुमंडल के गरम क्षेत्रों के तापमान और ऊंचाई की ठीक-ठीक जानकारी हासिल करने की दिशा में सहायता ली गयी।

पर वायुमंडल के तापमान में परिवर्तन की कहानी यहां पर भी समाप्त नहीं होती। अनेक जिज्ञासुओं ने अनुभव किया कि जब सांझ का सूर्य क्षितिज के नीचे चला जाता है, तो कई बार लगभग ८०-९० किमी की ऊंचाई पर श्वेत-से मेघ-खंड दिखायी दिया करते हैं। अनुमान लगाया गया है कि ये बादल किन्हीं प्रकार की गैसों के कणों के शीत के कारण जम जाने से उत्पन्न होते होंगे। यदि यह अनुमान ठीक है तो उक्त स्तर का तापमान शून्य से १००° सें. से भी अधिक नीचे होगा। इस स्थल और पहले वाले ध्वनि-प्रतिवर्तक स्तर के बीच तापमान का परिवर्तन धीरे-धीरे होता होगा, ऐसा सोचना सहज स्वाभाविक है। अतः अनुमान लगाया गया कि प्राय. तापमान ७० किमी तक बढ़ता रहता है और बाद में पुनः कम होने लगता है। न्यूनतम तापमान लगभग ९० किमी के करीब अनुभव होता है। और उसके बाद··· ?

तापमान की परिभाषा बदल जाती है

उसके बाद की परिस्थिति की चर्चा हम बाद में करेंगे। जानते हैं आप, क्यों? क्योंकि इसके बाद तापमान की परिभाषा बदल जाती है। शायद आप उत्सुक होकर पूछें कि भला वह कैसे ?

हम इस स्थल पर आपके इस प्रश्न का उत्तर तो नहीं देंगे पर एक छोटा-सा किस्सा आपकी सेवा में अवश्य पेश करेंगे। सन १९३५ में रेडियो विज्ञान के प्रसिद्ध खोजी प्रो. ऐपल्टन ने घोषणा की कि लगभग १५०-२०० किमी के बीच एक ऐसी परत है, जिसका तापमान १०००° सें. के करीब है। अगले ही वर्ष प्रो. फ्यूशस ने घोषणा की कि उक्त परत का तापमान सम्भवतया २०००° सें. है। पर आपने सुना होगा कि इन्हीं परतों में से पृथ्वी-पुत्रों के कई कृत्रिम उपग्रह सही-सलामत गुजर चुके हैं। इस सम्बन्ध में यह भी जानना रोचक होगा कि इन परतों की गहराई बीसियों किमी है। वैज्ञानिकों का कहना है कि भले ही इन स्थलों का तापमान बहुत अधिक है, तो भी इनमें से गुजरने वाले पदार्थों की प्रायः कोई हानि नहीं होती। आप भी कहेंगे कि भला यह कैसे गरम प्रदेश हैं, जिनकी गरमी हानिकारक ही नहीं ?

इसका उत्तर यह है कि इन उच्च तापमान के क्षेत्रों में गरमी ही नहीं है। अब आप पूछ उठेंगे कि क्या कोई ऐसा भी उच्च तापमान का प्रदेश हो सकता है जिसमें गरमी ही न हो ? जी हां, अवश्य। वायुमंडल की यह विशेषता है कि वह ऐसे रोचक क्षेत्रों का भी आवास है। पर इन रोचक क्षेत्रों का विवरण देने से पूर्व हमें वायुमंडल के कुछ अन्य तत्त्वों का परिचय देना पड़ेगा जो आप अगले अंक में पढ़ेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय मसाले

रतनकुमार टण्डन

मसाला शब्द एक आकर्षण है। इसके नाम से ही मुंह में पानी आ जाता है। कोई ऐसा भोज्य पदार्थ नहीं जिस पर इसकी मुहर न लगी हो। यह सत्य है कि विभिन्न देशों में इसका उपयोग भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है; कहीं बहुत गरम खाना पसन्द किया जाता है तो कहीं ठण्डा। मसाले हमारे भोजन के अभिन्न अंग हैं। ये भोजन को सुस्वादु बनाने, उसमें सुरभि लाने तथा सरसता उत्पन्न करने में महत्त्वपूर्ण योग देते हैं।

भारत मसालों का आदि जन्म स्थान है। इसी कारण प्राचीन काल से दूर विदेशों में व्यापारियों ने, शासकों ने तथा यात्रियों एवं नाविकों ने भारत के किनारों पर डेरे डाले थे। भारत तक पहुंचने के लिए समुद्र का छोटा रास्ता ढूंढ़ निकालने का श्रेय भारतीय मसालों ने ही कोलम्बस को दिया था। भारत पिछले ३५०० वर्षों से संसार को मसाले देता रहा है। भारत में मसालों की उत्पत्ति पश्चिमी तट पर मलाबार में प्राचीन काल से होती रही है।

यहां के मुख्य मसालों में काली मिर्च, लौंग, इलायची, अदरक, धनिया, जीरा, हल्दी, राई, मेथी, लहसुन और प्याज देश-देशान्तरों में अत्यधिक लोकप्रिय हुए हैं।

उपयोग का प्रारम्भ

मसालों के उपयोग का प्रारम्भ कब हुआ ? यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता, किन्तु धनिया और जीरा तो अत्यन्त प्राचीन काल से मिस्र निवासियों को ज्ञात थे। मिस्र की प्राचीन कब्रों से जो धनिया प्राप्त हुआ है वह लगभग २००० वर्ष पूर्व का अनुमाना जाता है। पश्चिम के लोगों को मसालों का परिचय काफी देर से लगा। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में कोलम्बस ने नयी दुनिया की खोज की थी। कहा जाता है कि उसकी समुद्री यात्रा का एक उद्देश्य भारत के मसालों की खोज भी था। संयोगवश इसका श्रेय पुर्तगाली नाविक वास्कोडिगामा को मिला और भारत की खोज करके वापस लौटते समय वह दो जहाज मसालों से खचाखच भरकर ले गया था। पूरी यात्रा में जो व्यय हुआ था उससे कई गुने अधिक मूल्यवान मसाले लेकर वह अपने देश को लौटा था। वास्कोडिगामा के पश्चात लगातार ३०० वर्षों तक मसाले उत्पन्न करने वाले देशों को हथियाने के लिए पुर्तगाल, स्पेन, फ्रांस, हालैण्ड तथा ग्रेट ब्रिटेन में विकट युद्ध होते रहे हैं। भारत में पुर्तगाली और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जितने भी उपनिवेश स्थापित हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, वे मसालों के व्यापारियों द्वारा ही किये गये हैं।

काली मिर्च को मसालों का सम्राट् कहा जाता है। यह भोजन में सर्वोपरि स्थान रखती है। साथ ही यह दवाओं में भी प्रयुक्त होती है। अमरीका में इसका उपयोग खाद्य वस्तुओं की डिब्बावन्दी में होता है। काली मिर्च के निर्यात में आज भारत दूसरे स्थान पर है। भारतीय काली मिर्च अपने स्वाद और गुण में अद्वितीय है क्योंकि इसका उत्पादन विशेष सावधानीपूर्वक किया जाता है। अमरीका में इसकी खपत सबसे अधिक है। उसके बाद रूस का नम्बर आता है। इटली में भी इसकी खपत बढ़ रही है। प्रति-वर्ष भारत को इससे दो करोड़ डालर की आय होती है।

इलायची भारत से ही संसार को सबसे अधिक निर्यात की जाती है। भारतीय इलायची अपने तेल तथा अन्य गुणों में सबसे उत्तम समझी जाती है। इलायची की खेती केरल तथा मैसूर के पहाड़ी इलाकों में बहुता-यत से होती है। मद्रास व महाराष्ट्र में भी इसकी खेती अच्छी होती है। इसका वार्षिक उत्पादन ३२०० टन है। भारतीय इलायची सभी प्रमुख देशों को भेजी जाती है। भिन्न-भिन्न देश विभिन्न प्रकार से इसका प्रयोग करते हैं। इससे बहुमूल्य तेल निकलता है जो ओषधीय गुणों में श्रेष्ठ है।

हल्दी की खेती भारत में प्राचीन काल से होती रही है। मसाले के रूप में तो इसका प्रयोग होता ही है; परन्तु अधिक प्रयोग एक रंजक के रूप में कपड़े के मिलों में तथा रंग उत्पादक कम्पनियों में होता है। खाद्य संरक्षण में भी इसका प्रयोग होता है और ओषधि के रूप में त्वचा रोगों के लिए भी इसका प्रयोग होता है। इसकी सूखी गांठ यदि तोड़ने पर धातु जैसी ध्वनि दे तो वह अच्छी समझी जाती है। भारत से यह अनेक देशों को निर्यात की जाती है जिनमें लंका, अमरीका और इंगलैण्ड मुख्य हैं।

अदरख भी एक प्रमुख मसाला है। इसका वार्षिक उत्पादन १७,००० टन है।

लौंग

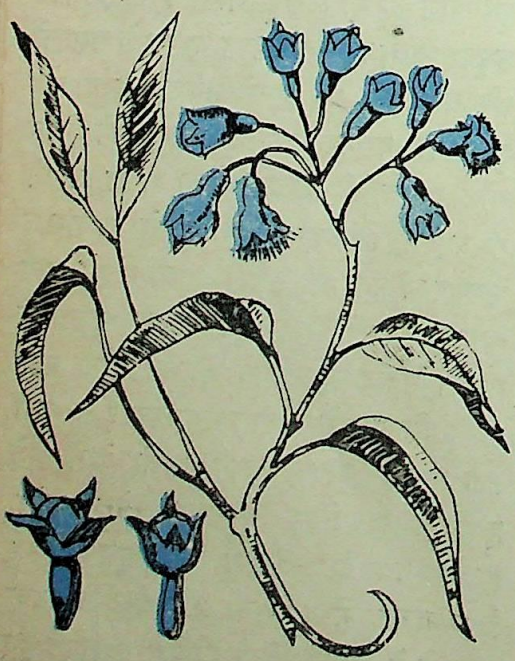

काली मिर्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरी और लाल मिर्च

केरल में यह बहुतायत से पैदा होता है। मध्य प्रदेश, बंगाल, उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, राजस्थान, पंजाब, हिमाचल प्रदेश भी इसकी पैदावार के मुख्य केन्द्र हैं। इसका भी सत्व तथा तेल निकाला जाता है। इसके निर्यात से भारत को २५लाख डालर की वार्षिक आय होती है।

लाल मिर्च अधिकतर आन्ध्र, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, मैसूर में उगायी जाती है। इसका वार्षिक उत्पादन ४,००,००० टन है। इसका सिरका और अचार बड़ा जायकेदार बनता है। अनेक ओषधियों में भी इसका उपयोग होता है।

हरी मिर्च विटामिन 'सी' का भंडार है। जिन लोगों को विटामिन 'सी' की कमी होती है उन्हें इसे खाने के लिए बताते हैं। यह भी बड़ी मात्रा में निर्यात की जाती है। भारत में अनेक उत्पादक हरी मिर्च से 'करी पाउडर' बनाने में संलग्न हैं जिनमें कुछ तो लगभग १०० वर्षों से काम कर रहे हैं। अन्य देशों की अपेक्षा यूरोप में इसकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है।

भारतीय मसालों की अपनी एक शुद्धता होती है। निर्यात करने से पहले इनका परिशोधन तथा निरीक्षण होता है। भारत सरकार ने मसालों के निर्यात के लिए 'स्पाइसेज एक्सपोर्ट प्रमोशन काउन्सिल' एर्नाकुलम में स्थापित कर दी है जहां से प्रत्येक विवरण, निर्देश आदि उपलब्ध हैं।

मसालों की संरचना

मसालों में प्रायः पांच प्रकार के अवयव होते हैं—वाष्पशील तेल, विटामिन, खनिज पदार्थ (केलसियम, फास्फोरस, लोहा) तथा अन्य कार्बनिक अवयव। छौंक लगाने पर मसालों से जो सुगंध उठती है वह इन्हीं वाष्पशील तेलों के कारण होती है। लौंग का तेल, धनिया का तेल, मिर्च का तेल ऐसे ही वाष्पशील तेल हैं। इन तेलों से केवल सुगंध एवं स्वाद हो प्राप्त होता है। ये भोजन को परिरक्षित नहीं कर सकते।

मसालों में सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है सक्रिय पदार्थ। इसे मसालों का प्राण कह सकते हैं। लाल मिर्च तथा काली मिर्च के

दारचीनी के पौधे की छाल मसाले के रूप में प्रयोग की जाती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायफल : पत्तियां, फूल और फल

स्वाद में जो अन्तर है वह इनमें पाये जाने वाले विभिन्न सक्रिय पदार्थों के कारण है। लाल मिर्च में वह पदार्थ कैप्सिसिन है और काली मिर्च में पिपरीन। ये दोनों इतने तिक्त हैं कि जल के १० लाख भाग में इनका १ भाग भी मौजूद होने पर इनकी तिक्तता बनी रहती है। लाल मिर्च में यह सक्रिय पदार्थ मिर्च के बीज में नहीं, उसके बाह्यावरण के भीतरी भाग में होता है। काली मिर्च में ओलियोरेजिन भी होता है, जो तिक्तता एवं सुगंध के लिए उत्तरदायी है। यह पदार्थ तेलों की विकृत गंध को दूर करता है। मिर्च का तेल तिक्तता रहित होता है। उसका भी उपयोग भोजन को सुस्वादु बनाने के लिए किया जाता है।

मसाले भोजन को परिरक्षित करने के लिए भी इस्तेमाल किये जाते हैं। अचारों को मसालों की मदद से महीनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। लौंग और काली मिर्च की थोड़ी-सी भी मात्रा भोजन को सड़ने से बचाती है।

औषधियों के रूप में विविध मसाले पीड़ाहारी, क्षुधावर्धक, रेचक तथा उत्तेजक पाये जाते हैं। इनकी समुचित मात्रा ही लाभकारी होती है अन्यथा इनके अनुचित प्रयोग से उलटा ही प्रभाव पड़ता है। मेथी दूधवर्धक, केलसियम और फास्फोरस का स्रोत तथा अग्निवर्धक भी है। इलायची वात-नाशक और क्षुधावर्धक है तथा जीरा पाचक है। **जायफल** बालरोगों की प्रसिद्ध औषधि है।

मसालों के अत्यधिक महत्त्व का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि मध्य युग में १ पौंड **जावित्री** देकर तीन भेड़ें और २ पौण्ड जावित्री से एक गाय खरीदी जा सकती थी तथा एक पौण्ड काली मिर्च से एक गुलाम। अतः मसाले सोने के समान मूल्यवान थे और इनसे स्थायी आय होती थी। पश्चिम के लोग मसालों के भोजन-परिरक्षक तथा ओषधीय गुणों से परिचित थे। इसीलिए मध्य युग में मसालों के लिए बड़े-बड़े युद्ध भी हुए। मसालों से भोजन का पोषणमान कई दिनों तक वैसा ही बना रहता है। जब तक यूरोप में मसालों का प्रचार नहीं था, तब तक भोजन को खराब हो जाने पर फेंक देना पड़ता था। मसालों से पूर्व इंगलैण्ड में शीत ऋतु के आगमन पर पशुओं का अरक्षित मांस शीघ्र ही खराब हो जाता था परन्तु अब मसालों द्वारा उसे काफी दिनों तक यथावत रखना संभव है। इस प्रकार मसालों को एक प्रकार से खाद्य का अभाव दूर करने का भी श्रेय दिया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोजेफ ब्लेक

नरेशचन्द 'पुष्प'

युवा आविष्कारक जेम्स वाट को यंत्रों की बड़ी जानकारी थी। वह किसी भी यंत्र को सहज ही देखकर बता सकता था कि वह किस भांति कार्य करता है। वह अपना हाथ जिस यंत्र पर लगा देता उसकी त्रुटियां चुटकियों में समाप्त हो जाती थीं! जब कभी वह किसी कठिनाई को हल न कर पाता तो अपने गुरु डा. जोजेफ ब्लेक के पास ले जाता था। डा. ब्लेक ग्लासगो विश्वविद्यालय में शरीर-विज्ञान के प्राध्यापक तथा रसायन शास्त्र विभाग के अध्यक्ष थे। जोजेफ ब्लेक जेम्स वाट के प्रत्येक कार्य में बड़ी रुचि रखते थे और पूरी सहायता भी करते थे। यद्यपि दोनों में आयु का बड़ा अन्तर था फिर भी दोनों में पक्की मित्रता थी। इसका मुख्य कारण था डा. ब्लेक की यह मान्यता कि प्रत्येक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक खोज तथा आविष्कार का उपयोग मानव समाज के लाभ तथा उपयोगों के लिए होना चाहिए।

स्वभाव तथा व्यक्तित्व

डा. ब्लेक का स्वभाव शांत, संतुलित तथा निर्मल था। संगीतप्रिय ब्लेक को कभी-कभी बांसुरी पर मधुर स्वर निकालते हुए भी देखा जाता था। प्रायः बांसुरी बजाते ही बजाते वे जेम्स वाट की प्रयोगशाला में पहुंच जाते थे।

डा. ब्लेक का व्यक्तित्व प्रभावशाली था। उनमें ऐसी शिष्टता और असाधारण आकर्षण था कि वह अन्य प्राध्यापकों से अलग ही निखर आता था। उनकी वाणी में विशेषता थी, वार्तालाप में निराला ढंग। वह वार्तालाप करते तो बड़े ही सहज ढंग से धीमे स्वर से, फिर भी उनकी वाणी प्रभावशाली और नपी-तुली होती थी।

विद्यार्थीगण उन पर श्रद्धा रखते थे और उनका सम्मान करते थे। शरारती छात्र भी उनका आदर करते थे। कोई भी विद्यार्थी ऐसे विद्वान, शिष्ट और सहृदय व्यक्ति के प्रति धृष्टता नहीं कर सकता था।

डा. ब्लेक अपने प्रत्येक कार्य को बड़ी लगन तथा सावधानी से करते थे। जल्दबाजी तथा मूर्खतापूर्ण ढंग से किये गये कार्यों से उन्हें घृणा थी। उनके विद्यार्थी उनकी स्वच्छता से विशेष प्रभावित थे। पढ़ाने के पश्चात प्रयोगात्मक कार्य बड़ी सावधानी से कराते थे। प्रत्येक सम्भावित कठिनाई को वे पहले ही से भांप लेते थे।

वैज्ञानिक उपलब्धियां

डा. ब्लेक की वैज्ञानिक उपलब्धियां क्रान्तिकारी थीं। जैव वैज्ञानिक होने के नाते उन्होंने गुर्दे की पथरी पर विशेष अध्ययन किया। ब्लेक को अनाड़ी चिकित्सकों द्वारा दी जाने वाली दवाइयों पर बड़ा आश्चर्य होता था। वे लोग रोगियों को अधिकतर अण्डों के छिलके या घोंघों के छिलकों के चूर्ण देते थे और रोगी अच्छे हो जाते थे! इसी विचित्रता ने डा. ब्लेक को चूने के जल तथा केलसियम युक्त पदार्थ पर अम्लों तथा ताप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

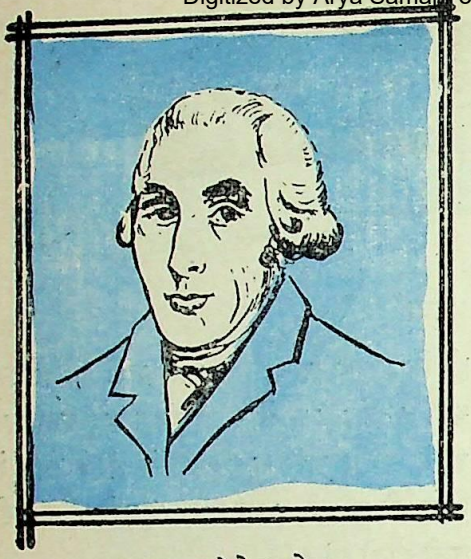

गुरु : जोजेफ ब्लेक

के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने जल्द ही गैसों के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर ली। उस समय तक लोग गैसों से भलीभांति परिचित नहीं थे और आक्सीजन तथा हाइड्रोजन को अशुद्ध गैसें मानते थे।

डा. ब्लेक ने परीक्षणों में प्रयुक्त पदार्थों तथा उनके क्रियाफलों का माप करने की ओर नया कदम उठाया। यह आधुनिक रसायन शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण आरम्भ था। उस महत्त्वपूर्ण कार्य में प्रीस्टले, लेवाशिये आदि प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने भी भाग लिया और एक सुन्दर व्यवस्था बनायी। उसमें उन्होंने भार तथा आयतन के अनुसार क्रिया के नियमों को स्थापित किया जो तभी से रासायनिक उद्योगों में प्रमुख सहायक रहे हैं।

डा. ब्लेक ने द्रव्यों की तीनों अवस्थाओं द्रव, ठोस, गैस का गहन अध्ययन किया हुआ था। एक दिन वे जेम्स वाट के वर्कशाप पहुंचे और पूछा, "क्यों जेमी! तुमने मेरे गुप्त ताप के सिद्धान्तों के बारे में सुना है? मैं लगभग दो वर्षों से इस विषय पर वार्ताएं देता आ रहा हूं।" डा. ब्लेक का विश्वास था कि जल चाहे किसी भी अवस्था में क्यों न हो, वह नन्हे-नन्हे कणों से बना रहता है। वे कण बर्फ में अधिक घनीभूत, जल में कम घनीभूत तथा गैसीय अवस्था में छितराये रहते हैं। उन्हें पृथक करने के लिए ताप की आवश्यकता होती है। यहां यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि उस समय तक आक्सीजन का आविष्कार नहीं हुआ था, अतः वैज्ञानिकों को जल की संरचना का ज्ञान नहीं था।

वाट की जिज्ञासा का समाधान

उन दिनों जेम्स वाट एक नये प्रकार के इंजन को देख रहा था जो वास्तव में 'वाष्प' का इंजन न होकर केवल शून्यावस्था उत्पन्न करने वाला यन्त्र था। उसमें वायु-दाब अपना काम करता था। उसमें एक सिलिण्डर तथा पिस्टन लगाया गया था। सिलिण्डर में नीचे से वाष्प छोड़ी जाती थी। उस वाष्प को ठण्डे पानी द्वारा ठण्डा कर लिया जाता था। फलतः वाष्प जल में पुनः परिवर्तित हो जाने पर अन्दर शून्य उत्पन्न हो जाता था। इधर पिस्टन के ऊपर वायुमंडल का दबाव उसे सिलिण्डर के अन्दर धकेल देता था जो पुनः पिस्टन को बाहर फेंक देता था। यों यह क्रिया बारम्बार दोहरायी जाती थी।

वाट को इसमें आश्चर्य वाली बात यह लगी कि वाष्प को ठण्डा करने में जो जल प्रयुक्त होता था वह वाष्प के ताप से पुनः वाष्पित हो जाता था! इस पर जब उसने तापमापी द्वारा देखा तो ताप २१२° फा. देखने में आया जो जल का क्वथनांक है। वास्तव में वाष्प का ताप अत्यन्त अधिक होता है। वाट जानना चाहता था कि आखिर वह बीच का ताप कहां गया! इसके लिए उसने एक प्रयोग किया। उसने एक टोंटीदार चायदानी में जल को खौलाया। टोंटी में एक रबर की नली लगा दी जिसका दूसरा सिरा ठण्डे जल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाल दिया। उसको विश्वास था कि वाष्प जल में मिलकर ठण्डी हो जायगी लेकिन ऐसा नहीं हुआ। पात्र का ठण्डा जल, जिसमें वाष्प आ रही थी, स्वयं ही खौलने लगा और तापमापी से देखने पर वही २१२° ज्ञात हुआ।

इन जिज्ञासाओं का उत्तर जब वाट न जान पाया तो डा. ब्लेक ने ही उसका समाधान किया।

डा. ब्लेक ने बताया कि जब किसी तरल पदार्थ को उसके क्वथनांक तक गरम किया जाता है तो उस द्रव के कण ताप की पर्याप्त मात्रा अपने अन्दर शोषित कर लेते हैं जिसके फलस्वरूप उनका परस्पर संयोजन विच्छेदित हो जाता है और वे परस्पर आकर्षित करने की क्षमता खो देते हैं।

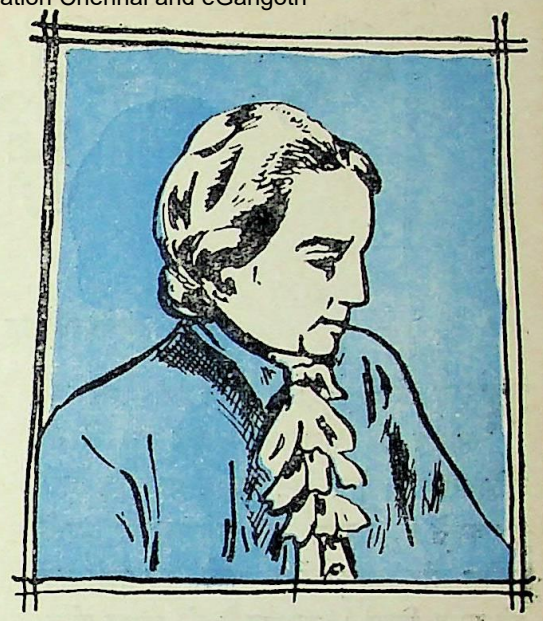

शिष्य : जेम्स वाट

आधुनिक विचारधारा डा. ब्लेक के इस सिद्धान्त से सहमत नहीं और मानती है कि वह ताप, ऊर्जा में परिवर्तित होकर, गुप्त हो जाता है। फिर भी ब्लेक की व्याख्या तत्कालीन (सन् १७५०-६० के) विचार-स्तर से काफी ऊंची थी और जेम्स वाट की समस्या को एक बार तो उन्होंने सुलझा दिया था। वाष्प के उस विचित्र व्यवहार के विषय में वाट की जिज्ञासा शांत हो चुकी थी। वाट ने लिखा है कि डा. ब्लेक संयोग से एक ऐसे भौतिक सत्य पर पहुंच चुके थे जहां उस महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त का समर्थन होता है। ●

दाढ़ी-गाथा

संसार में सबसे लम्बी दाढ़ी का रिकार्ड ५ मीटर ३३ सेंटिमीटर है। यह दाढ़ी नार्वे निवासी हैन्स लैंगसेथ की थी जिसकी मृत्यु १९२७ में हो गयी।

दाढ़ी बढ़ने का औसत लगभग ०·४ मिलिमीटर प्रति दिन अर्थात अगभग १२ मिलिमीटर प्रति मास है।

दाढ़ी बढ़ाने वाले शायद दाढ़ी बनाने को समय का अपव्यय समझते हैं। बात ठीक भी है। अपने लगभग ५५ वर्ष के दाढ़ी-मुंडन काल में एक व्यक्ति लगभग ३३६० घंटे यानी १४० दिन दाढ़ी मूंडने में व्यय कर देता है।

लहसुन में गुण बहुत हैं

पाचन तथा हृदय की क्रिया में सुधार और विभिन्न संक्रमणों की चिकित्सा के लिए लहसुन अत्यन्त उपयोगी है। सोवियत रूस में दीर्घ काल से इसका प्रयोग 'देशी' चिकित्सा में प्रचुरता से होता आया है। वृक्क (गुरदे) की पथरी गलाने के लिए और गठिया का इलाज करने के लिए वोडका में लहसुन का अर्क मिला कर पिया जाता है। सोवियत वैज्ञानिकों ने लहसुन पर अनुसंधान करके ज्ञात किया है कि इसमें अनेक फाइटोनसाइड रहते हैं जिनमें जीवाणु-प्रतिरोधी (एन्टी-बायोटिक) गुण होते हैं। सोवियत वैज्ञानिक अब लहसुन से 'एलीसिन' नामक एन्टी-बायोटिक तथा अन्य औषधियां तैयार कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खून चूसने वाले मेहमान

बलराजसिंह सिरोही

मनुष्य की बहादुरी के कारनामे लिखने में कागज की मंहगाई के इस युग में भी इतिहासकारों ने न जाने कितने पन्ने रंग डाले हैं। कहते हैं, आदम की औलाद ने अपनी शक्ति और बाहुबल के आगे देवताओं तक को झुका दिया। फरहाद ने तो पहाड़ खोद-कर नहर ही निकाली किन्तु दसशीश रावण तो स्वयं कैलास को ही अपनी भुजाओं पर उठा लिया करता था। उलाइसिस के शौर्य से प्रभावित न जाने कितनी देवांगनाएं उसकी अंकशायनी बनने के लिए लालायित थीं। फिल्म के हीरो को तो आपने भी एक साथ कई शेरों से मल्लयुद्ध करते देखा होगा और टार्जन को एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर छलांग लगाते देखकर, यदि आपने नहीं तो कम से कम आपके आसपास बैठे किसी एक ने जरूर अगली कुर्सी पर छलांग लगा देने की चेष्टा की होगी।

घुसपैठिये

किन्तु सुबह की सुनहरी धूप में दीवार से पीठ लगाकर बैठे एक के बाद दूसरी जूं को कत्ल करने वाले यदि एक भी बहादुर को आपने देख लिया है, तो समझ लीजिये, आपका जन्म सफल हो गया। कमीज की सींवन, धोती की शिकन, या लहंगे की गूंथन में बने पक्के 'पिल-बाक्सों' में से इन घुस-पैठियों को ढूंढ़-ढूंढ़कर बाहर निकालना और फिर बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के ही सबको मौत के घाट उतारना कोई मामूली कमाल नहीं है। सारी प्रक्रिया में एक क्षण के लिए भी आराम नहीं! माथे का पसीना तक पोंछने की फुरसत नहीं। पता नहीं इन 'काव्येर उपेक्षित-उपेक्षिताओं' की ओर साहित्यकारों का ध्यान अब तक क्यों नहीं गया!

गुरिल्ले

जूं तो फिर भी सीधा प्राणी ठहरा, किन्तु खटमल का तो नाम सुनते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। आखिर आदमी का खून है। कुछ लोगों के तो शब्द ही दूसरों को जलाने के लिए पर्याप्त होते हैं, फिर मनुष्य के रक्त पर पले इन खटमलों के दंश में क्या इतनी भी शक्ति नहीं होनी चाहिए थी कि काटते ही समूचे शरीर में भन्नाहट उत्पन्न हो जाय? बिस्तर पर लेटते ही चारपाई की पाटियों और पायों से निकलकर जिस समय ये गुरिल्ले घात लगाकर हमला करते हैं, तो बड़े-बड़े बहादुर मैदान छोड़कर भागते देखे गये हैं। गुरिल्ला तो बेचारा मुफ्त में बदनाम है, अन्यथा गुरिल्ला युद्ध की व्यूह-रचना चीनियों और उनके भाई-बन्दों ने इन्हीं खटमलों से सीखी है। प्रतिक्रियावादियों के अड़ंगों के कारण इन्हें अभी तक अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त नहीं हो सकी है, अन्यथा इस आधुनिकतम युद्ध-प्रणाली का नाम गुरिल्ला युद्ध के बजाय 'खटमल युद्ध' होता। ब्रह्माण्ड की रचना करते ही ब्रह्मा को अपनी भूल का आभास हो गया था। इसलिए कमल-नाल को छोड़कर कभी भी उन्होंने चारपाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर आने की हिम्मत नहीं की। शिवजी कैलास पर चले गये, तथा विष्णु क्षीर-सागर म, और वह भी नाग-शैया पर। सभी त्रिकालदर्शी थे और खटमलों के पराक्रम से पूर्वपरिचित थे। इसलिए चारपाई पर शयन करने का विचार इन्होंने अपने मन में आने ही नहीं दिया।

काव्यकार

पुनर्जन्म में यदि आपका विश्वास न भी हो तो भी कम से कम इतना तो मान ही लीजिये कि विस्तर पर लेटते ही गुनगुनाकर आपकी नींद हराम करने वाले ये मच्छर, अपने पूर्व जन्म में बड़े पहुंचे हुए काव्यकार थे। अपने भाव प्रकट करने के लिए इन्होंने छन्द की विविध विधाएं अपनायी थीं और उसी के अनुसार कोई क्यूलेक्स बना और कोई ऐनोफिलीज। इनमें भी उपजातियां, गोत्र, प्रवर और पिण्ड आदि सभी कुछ होते हैं। मौका लगते ही ये आपके कान पर तशरीफ ले आते हैं और अपनी रचनाएं सुनाने लगते हैं। काटना इनका पेशा नहीं है। जब आपका ध्यान दूसरी ओर चला जाता है अथवा आप पूरी रचना सुने विना ही सोने लगते हैं, तो यह बस यों ही, जरा हल्के से चिकोट लिया करते हैं। आप तो बेकार नाराज हो गये। अरे साहब, सुनिये तो सही !

इत्र और तेल-फुलेल से सजे सुहावने सलोने विस्तर पर लेटकर आप जब भी एकाकीपन महसूस करते हैं और न आने वाले की बेवफाई पर जलभुन रहे होते हैं, तो मच्छर, खटमल या जूं में से कोई न कोई हाजिर हो ही जाता है। डरने की आवश्यकता इसलिए नहीं है, क्योंकि इनमें से कोई भी मांसाहारी नहीं होता। यों खून तो सभी चूसते हैं, किन्तु ये खून भी कभी मुफ्त में नहीं चूसते। बीच-बीच में इसके बदले कुछ दक्षिणा भी देते रहते हैं।

जूं की देन : टाइफस ज्वर

टाइफाइड ज्वर एक ऐसी ही दक्षिणा है जो जूं, पिस्सू और चीलर से मिलती है। जूं से उत्पन्न होने वाला टाइफस ज्वर महामारी के रूप में फैलता है जिससे मृत्यु-दर बहुत अधिक होती है। यह रोग यद्यपि सार्वभौमिक है, किन्तु गरीबी और भीड़-भाड़ वाले घरों में, तथा अकाल पीड़ितों आदि में यह और भी अधिक तेजी से फैलता है। समाज के पिछड़े लोगों में, जहां स्नान करने के लिए साबुन तक उपलब्ध नहीं अथवा पेट की आग बुझाने के लिए काम करते समय स्नान तक करने का समय नहीं, वहां जूं की आबादी बहुत अधिक बढ़ जाय तो विस्मय ही क्या है। कपड़े बदलने से, रोगी के बिस्तर पर बैठने से, या उसके सम्पर्क में आने से, जूं बड़ी आसानी से दूसरे लोगों पर चली आती है। कपड़े गन्दे रखने से, या स्नान न करने से, या सिर के बाल न धोने से जूं की संख्या

१. केकड़ा चीलर २. जूं ३. चीलर

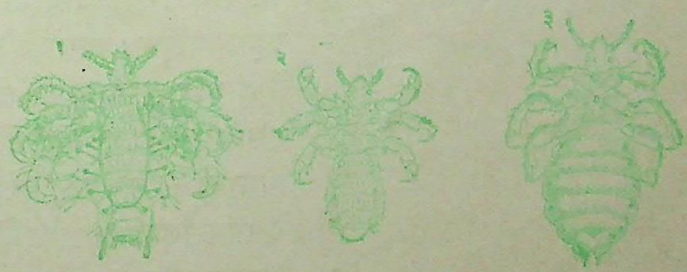

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेजी से बढ़ती है। एक बार एक साहब की कमीज में १०,४२८ जूं और १०,२५३ जूं के अण्डे पाये गये। संक्रमित जूं जब मनुष्य का रक्त चूसती है, तो टाइफस ज्वर के रोगाणु रिकेट्शिया मनुष्य के शरीर में चले जाते हैं।

टाइफस ज्वर मुख्यतः शरद और बसन्त में फैलता है। लगभग दो सप्ताह तक तेज बुखार आता है, कमर में दर्द, सिर में तेज दर्द, श्वसन-दोष और मानसिक विकार हो जाता है। चेहरे पर तनाव आ जाता है, पांचवे-छठे दिन सीने और पेट पर लाल रंग के चकत्ते पड़ जाते हैं, जो बाद में समूचे शरीर पर फैल जाते हैं। कभी-कभी तो ७५ प्रतिशत रोगियों की मृत्यु हो जाती है। सोवियत रूस में नवम्बर १९४१ में इस रोग के कारण २५-३० लाख लोग चल बसे। १९४२ में मिस्र में ३००० और शेष उत्तरी अफ्रीका में ८००० लोग इस रोग से पीड़ित थे। सितम्बर १९४३ में जब विदेशी फौजें १० लाख की आबादी वाले शहर नेपल्स में घुसीं, तो मरणासन्न और मृत मनुष्य बराबर-बराबर पड़े थे तथा उनके शरीर पर बेशुमार जूं रेंग रही थीं! इस महामारी में लगभग ८० प्रतिशत लोग जान से हाथ धो बैठे। इस रोग के रोगाणु रिकेट्शिया का पता लगाने वाला वैज्ञानिक रिकेट्स स्वयं इसी रोग में मरा!

बालों से चिपकी जूं और उसके अंडे (आवर्धित)

१९०७ में मैकी ने भारत में अपने अनुसन्धानों के आधार पर इस बात की पुष्टि की कि पुनरावर्ती ज्वर जूं के ही कारण होता है। रोग के स्पाइरोकीट जूं की आहार-नाल में रहते हैं। रक्त चूसने के पहले जूं अपनी आहार-नाल से एक प्रकार का स्राव त्वचा पर डाल देती है, ताकि चूसते समय रक्त जम न जाय। इस स्राव में रोग के स्पाइरोकीट विद्यमान रहते हैं। नाखूनों से जूं मारते समय स्पाइरोकीट जूं से निकलकर नाखूनों में चले जाते हैं, और शरीर खुजाते समय त्वचा के रास्ते शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। रोग अचानक शुरू होता है। सिर-दर्द, कंप-कंपी और ज्वर हो जाता है। सारे शरीर में दर्द होता है। ४-६ दिन तक तेज बुखार रहता है। ४-८ दिन शान्त रहने के बाद बुखार दुबारा हो जाता है।

टाइफस रोग से बचाव के लिए वैक्सीन उपलब्ध है और जूं यदि काफी संख्या में हों तो भी रोग लगने का डर नहीं रहता किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि कोई जानबूझकर गन्दा रहना शुरू कर दे और इन घिनौने मेहमानों को अपने शरीर पर आश्रय देता रहे। डी.डी.टी. से जूं बड़ी आसानी से नष्ट की जा सकती है। इसके लिए शरीर के कपड़ों पर तीन सप्ताह बाद डी.डी.टी. छिड़कते रहना चाहिए। बालों और कपड़े की सींवनों से जूं और इनके अण्डों को नष्ट करना बहुत जरूरी है। किन्तु डी.डी.टी. छिड़कने का काम बहुत सावधानीपूर्वक और समझदारी के साथ किया जाना चाहिए। ऐसा न हो कि मेहमान और मेजमान साथ-साथ चल बसें!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खटमल : कोढ़ का कारण

जूं की ही तरह खटमल भी मनुष्यों के सदियों पुराने साथी हैं। अरस्तू ने इनकी चर्चा की है। ये निशाचर हैं अर्थात् रात्रि के समय सैर-सपाटे के लिए निकलते हैं। काला बाजार करने वाले लोगों के समान ही, इनमें भी सूर्य के प्रकाश में आने की हिम्मत नहीं है। रात्रि के समय अपनी मांदों से निकल-कर शांति से सोने वालों पर आक्रमण करने के उद्देश्य से खटमल काफी लम्बे-लम्बे फासले कुछ ही क्षणों में पार कर जाते हैं। ये बड़े सामाजिक होते हैं, इसलिए जहां भी मिलते हैं, एक साथ सैकड़ों की संख्या में मिलते हैं। मादा १० से ५० तक समूहों में २०० से ५०० तक अण्डे देती हैं। इनसे निकले बच्चे लगभग ६-८ सप्ताह में पूर्ण युवा हो जाते हैं। खून पीने की उचित व्यवस्था हो तो सामान्य तापमान पर खटमल ५४ से ३१६ दिन तक जीवित रह सकता है।

सभा-सम्मेलनों में मनुष्यों के साथ खटमल भी बराबर भाग लेते रहते हैं। बक्सों, सूटकेसों, कपड़ों या अन्य वस्तुओं के आदान-प्रदान के साथ खटमलों का भी आदान-प्रदान होता रहता है। आहार की कमी होते ही ये पानी के पाइपों, दीवारों या अन्य मार्गों से पड़ौसी के घर पहुंच जाते हैं। यौवन प्राप्त करने के लिए खटमल कम से कम पांच बार मनुष्य का रक्त पीता है। इनके काटते ही जलन और हलकी सूजन हो जाती है। इनमें प्लेग, पुनरावर्ती ज्वर, कोढ, काला-अजार और शागा रोग के रोगाणु वहन करने की क्षमता है।

खटमलों को नष्ट करने के लिए लिण्डेन, क्लोरडेन और डाइल्ड्रीन अत्यधिक उपयुक्त औषधियां हैं। आप चाहे इनका छिड़काव करें, चाहे चूर्ण के रूप में खटमलों के छुपने के स्थानों पर डाल दें, अथवा

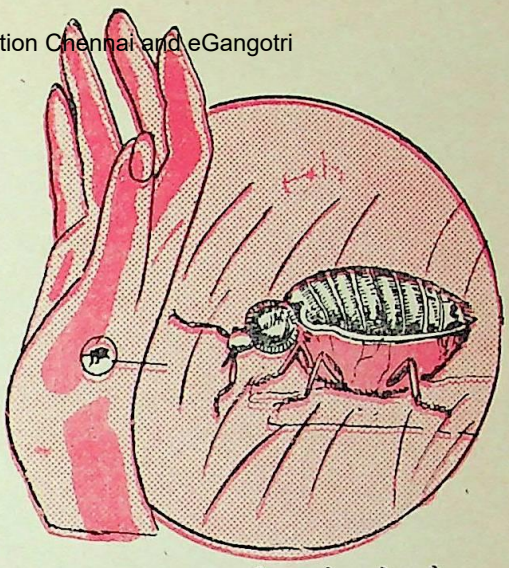

खटमल आपका खून पीकर मोटा होता है

इनका धुआं दें, किन्तु ये मुक्ति वाहिनियां जब भी संग्राम स्थल की ओर मार्च करती हैं तो खटमलों की फौजों के दस्ते के दस्ते कुछ ही क्षणों में मौत के घाट उतर जाते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन का सुझाव है कि ५ प्रतिशत डी.डी.टी. का घोल अलमारियों, फर्श की दरारों, चारपाइयों और चटाइयों आदि में डालते ही इन गुरिल्लों की अनेक बटालियनें देखते-देखते साफ हो जाती हैं और यदि इनकी कुछ जातियां बहुत अधिक प्रतिरोध करें तो ०·१–०·९ प्रतिशत गामा बी.एच.सी. का छिड़काव किया जा सकता है। यदि इससे भी सफलता न मिले तो प्रति दो सप्ताह बाद ०·५—१·० प्रतिशत मैलाथियन या डायाजिनान का पाउडर छिड़कना चाहिए, किन्तु ये आर्गेनो-फास्फोरस यौगिक मनुष्यों में बहुत अधिक विषाक्तता उत्पन्न कर सकते हैं।

मच्छर : मलेरिया, फाइलेरिया

मच्छरों से मलेरिया, फाइलेरिया ही नहीं अपितु पीतज्वर, डेंगू, मस्तिष्क-शोथ और अन्य अनेक रोग होते हैं। मलेरिया के सम्बन्ध में चीनियों का विश्वास था कि रोग की प्रक्रिया में तीन पिशाच आक्रमण करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

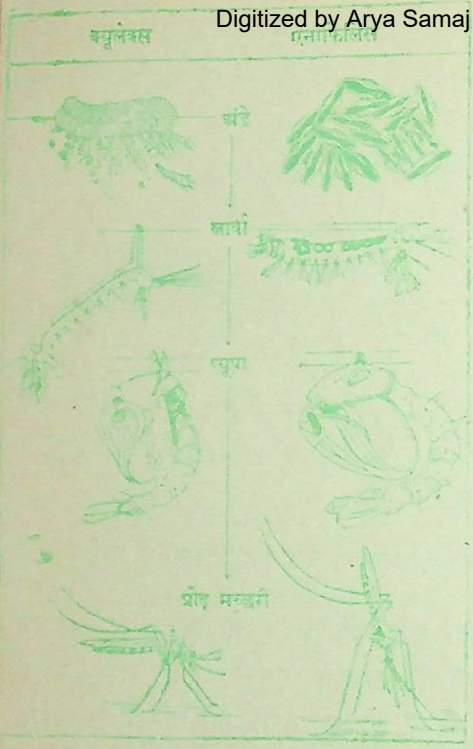

क्यूलेक्स तथा एनोफिलीज मच्छरों के जीवन-चक्र

हैं। पहला हथौड़ा बजाता है और सारा शरीर टूटने लगता है; दूसरा आग बरसाता है जिससे तेज बुखार चढ़ जाता है; और तीसरा ऊपर से एक घड़ा पानी डाल देता है। यूरोपियन तो बहुत बाद तक इसे बुरी हवा (*mal air*) से उत्पन्न रोग समझते रहे, किन्तु चरक बहुत पहले तीनों प्रकार के मलेरिया ज्वरों का वर्गीकरण कर चुके थे। बाद में रोग के कारण-कार्य का सम्बन्ध भी भारत में ही स्थापित हुआ। सर रोनाल्ड रॉस को अपने इस अनुसन्धान के लिए १८९७–९८ में दो बार नोबल पुरस्कार मिला।

मनुष्यों में प्लाज्मोडियम वंश की मुख्यतः तीन जातियों से मलेरिया होता है और इन्हीं के अनुसार ज्वर प्रतिदिन, तीसरे दिन या चौथे दिन चढ़ता है। रक्त परीक्षा से इस रोग का पता चल जाता है किन्तु यह काम बहुत सरल नहीं है। रोगाणु लाल रक्त-कणिकाओं को आक्रांत करते हैं, किन्तु रोग तभी प्रकट होता है, जब प्रति एक लाख लाल रक्त-कणिकाओं में से कम से कम एक कणिका में इसका परजीवी पहुंच जाय अर्थात् एक घन मिलिलीटर रक्त में लगभग ५० परजीवी विद्यमान हों। इसका अर्थ यह हुआ कि रोग के प्रकोप के समय ६० किलोग्राम भार वाले एक मनुष्य में कम से कम १५ करोड़ परजीवी होते हैं। मनुष्य के रक्त में लाल रक्त-कणिकाओं की संख्या इतनी अधिक होती है कि १५ करोड़ परजीवी संख्या के आधार पर विशेष महत्त्व नहीं रखते, तथा रक्त-परीक्षा में तनिक-सी लापरवाही से ही जांच के परिणाम गड़बड़ा जाते हैं। यही कारण है कि भारत में मलेरिया उन्मूलन पर इतना अधिक धन खर्च करने के बाद भी यह रोग जब तब प्रकट होता रहता है।

एनोफिलीज जाति की एक मादा मच्छर अपने जीवन काल में लगभग १००० तक अण्डे दे देती है। ये अण्डे शान्त जल पर तैरते रहते हैं। अण्डे से लगभग दो दिन में लार्वा निकल आते हैं तथा कुल मिलाकर लगभग तीन सप्ताह में काटने में समर्थ हो जाते हैं। रक्त चूसते समय यदि मनुष्य के रक्त में मलेरिया के रोगाणु विद्यमान हों तो ये परजीवी रक्त के साथ मच्छर के शरीर में चले जाते हैं। एनोफिलीज मच्छरों की लगभग ४०० जातियों में से केवल ८५ जातियों के शरीर में इन रोगाणुओं का विकास होता है और वह भी केवल मादाओं के शरीर में। लगभग दो सप्ताह में मच्छर के शरीर में रोगाणु का जीवन-चक्र पूरा हो जाता है तथा रोगाणु मच्छर की लार-ग्रन्थि में पहुंच जाते हैं। अगली बार जब मच्छर मनुष्य को काटता है तो लार के साथ ये रोगाणु मानव रक्त में प्रवेश कर चुके होते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और लगभग आधे पेट में ही यकृत और प्लीहा जैसे सुरक्षित स्थानों में पहुंच जाते हैं। यहां रोग की रोकथाम के लिए खायी जाने वाली साधारण औषधियां इन पर असर नहीं कर पातीं। परजीवी रोगाणु निश्चिन्त होकर

मस्तिष्क-शोथ और कई अन्य रोग तो मच्छरों की कृपा से फैलते ही हैं किन्तु फाइलेरिया के कारण हजारों-लाखों हसीनों का रूप विगड़ते देखा गया है। फाइलेरि-आइडी कुल के गोल कृमियों के माइक्रो-

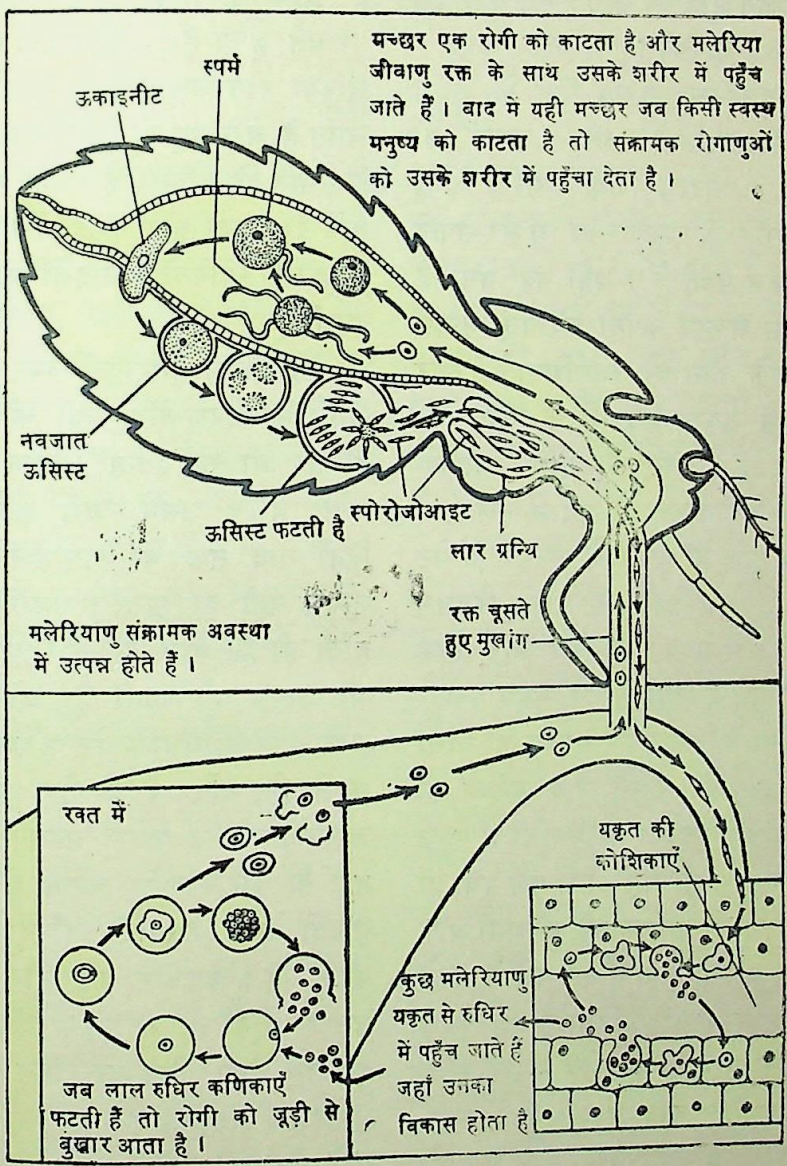

मलेरिया के रोगाणुओं का जीवन-चक्र : मच्छर तथा मनुष्य में

अपनी संख्या बढ़ाते रहते हैं और यदि सब कुछ इनके अनुकूल रहे तो लगभग १४ दिन में रोगी पर तीनों चीनी पिशाच आक्रमण कर रहे होते हैं।

फाइलेरिया मनुष्य के रक्त-परिसंचरण एवं लसीका तन्त्र, संयोजी ऊतक की परतों और सीरमी गुहाओं में, क्यूलेक्स मच्छरों के ही कारण पहुंचते हैं। यह रोग मध्य अफ्रीका,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण-पूर्वी चीन, भारत और अनेक पूर्वी देशों और विश्व के अन्य अनेक देशों में पाया जाता है। बैंक्रोफ्ट ने १८७६ में मनुष्य के रक्त में ऐसे ही आवरणयुक्त माइक्रो-फाइलेरिया खोज निकाले, जिनकी लम्बाई ३०० माइक्रोन और व्यास १० माइक्रोन तक था। (१००० माइक्रोन=१ मिलिमीटर)

ये माइक्रो-फाइलेरिया दिन के समय मनुष्य की धमनियों और हृदय की कोशिकाओं में आराम किया करते हैं किन्तु मनुष्य के सोते ही उसके रक्त में सैर-सपाटे के लिए निकल पड़ते हैं। यही वह समय है जब क्यूलेक्स मच्छर अपनी रचनाएं सुनाने के लिए आपके कान पर भिनभिनाते हैं और बीच-बीच में थकान उतारने के लिए रक्त चूसते रहते हैं। रक्त के साथ माइक्रो-फाइलेरिया भी मच्छर के पेट में चले जाते हैं। यहां ये कुछ ही घण्टों में मच्छर के पेट को बेधकर, वक्ष-पेशी के रास्ते लगभग १२-१४ दिन में मच्छर के सिर और ओष्ठ तक पहुंच जाते हैं तथा काटते समय मच्छर की लार-ग्रन्थि से फिसल कर मनुष्य की त्वचा तक पहुंच जाते हैं। इसके बाद मनुष्य की त्वचा को बेधकर लसीका वाहिकाओं में पहुंच जाते हैं और कुछ ही महीनों में पूर्ण युवा हो जाते हैं। ये लसीका वाहिकाओं, ग्रन्थियों और यहां तक कि वक्ष-वाहिका में बड़े मजे से पलते रहते हैं और सूक्ष्म फाइलेरिया उत्पन्न करते रहते हैं। एक बार वर्जिन द्वीप के एक रोगी के प्रति मिलिलीटर रक्त में २३,२४० माइक्रोफाइलेरिया पाये गये जबकि ऊपर से रोगी स्वस्थ दिखायी पड़ता था।

रोग की तीव्र दशा में बहुधा कंपकंपी के बाद बुखार हो जाता है, ३८° से ४०° सें. (१०१° से १०४° फा.) तक। न्यूनाधिक तीव्र विषरक्तता उत्पन्न हो जाती है तथा लसीका वाहिकाओं में सूजन आ जाती है। संक्रमण के कई मास बाद रोग का प्रकोप हो सकता है। किन्तु फाइलेरिया का सबसे भयानक रूप फीलपांव है। इसमें वृषणकोष, भग, स्तन या टांगें बहुत अधिक फूल जाती हैं। रोग का प्रकोप संक्रमण के अनेक वर्ष पश्चात होता है। बुशेरेरिया मेलेयी फाइलेरिया रोग उत्पन्न करने वाली एक अन्य जाति है और यह भी बुशेरेरिया बेन्थ्राफ्टाई के समान ही भयानक है। यह भारत, लंका, थाई देश, पूर्वी द्वीप समूह, फिलीपाइन द्वीप समूह और न्यूगिनी में फाइलेरिया रोग उत्पन्न करती है।

मलेरिया, पुनरावर्ती ज्वर, फाइलेरिया आदि के कारण यदि रोगी की मृत्यु न भी हो तो भी वह इतना अधिक कमजोर हो जाता है कि उसमें स्वस्थ होने के काफी दिनों बाद तक भी काम करने की शक्ति उत्पन्न नहीं हो पाती। स्वास्थ्य तो खराब होता ही है, साथ ही आर्थिक कठिनाइयां भी उत्पन्न हो जाती हैं; जो हाथ अपना और अपने आश्रितों के पेट पालन में सहायता करते हों, यदि वे ही रोग की हालत में चारपाई पर पड़े मक्खी मारा करें, तो दवा तक के पैसे संजोना कठिन हो जाता है। गरीबी और भुखमरी और भी तेजी से बढ़ती है। कमजोर को रोग, पाप और समाज तीनों ही अधिक परेशान करते हैं। इसलिए दशा दिन पर दिन गिरती ही जाती है। इतिहासकारों का मत है कि ग्रीक और रोम साम्राज्यों का पतन मलेरिया के कारण हुआ।

आज भी हमें लगातार कमजोर, अशक्त, निःस्रोत बनाये रखने में यदि रोगों का हाथ है, तो ये इन खून चूसने वाले मेहमानों से उत्पन्न होने वाले रोग हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संख्या इतिहास के पृष्ठों में

गांठ से (सं)गणक

महेन्द्र साह

कुछ दिन हुए अमरीकी समाचार पत्रों में एक समाचार प्रकाशित हुआ था कि वहां के किसी कारखाने में काम करने वाले एक मजदूर ने इसलिए त्याग-पत्र दे दिया था कि कारखाने के अन्दर उसका कोई नाम न होकर केवल एक 'नम्बर' था। उस मजदूर ने अपने त्याग-पत्र में लिखा कि वह एक व्यक्तित्व चाहता है और संख्या के आधार पर वह नौकरी नहीं करना चाहता है। अगर व्यवस्थापक उसकी सेवाओं की आवश्यकता समझते हैं तो उसे उसके नाम से पुकारा जाय न कि 'नम्बर' से।

संख्याओं के प्रति आक्रोश, लेकिन संख्याएं ही महत्त्वपूर्ण

मजदूर के इस त्याग-पत्र के पीछे संख्याओं के प्रति उसका आक्रोश छुपा हुआ अवश्य था, लेकिन आज के महानगरों में जनसाधारण बस्तियों के मकानों, बसों के नम्बरों के सहारे ही जीवित रहता है, इन नम्बरों के न होने से एक अजीब-सा वातावरण पैदा होने का डर रहता है। चाहे उपरोक्त अमरीकी मजदूर का आक्रोश उसके अनुसार ठीक ही क्यों नहीं हो, लेकिन आज का सभ्य मानव समाज संख्या से अटूट सम्बन्ध बनाये हुए है। फिर आज तो संगणकों का युग है। संख्या से मनुष्य का सम्बन्ध आदि काल से ही है। संख्या अगर न होती तो हमारा सारा समाज अव्यवस्थित होता और न विज्ञान आगे बढ़ता न मानव चन्द्र विजय कर पाता। एक क्षण को अगर यह कल्पना की जाय कि संख्या के बिना संसार कैसा होता? जैसा कि आज से हजारों साल पहले का मानव समाज था वह न तो आज के मनुष्य की तरह होता और न ही वह एक सामाजिक प्राणी बन पाता। संख्या के अभाव में सब अव्यवस्थित जीवन व्यतीत करते।

पृथ्वी का सबसे बुद्धिमान प्राणी मनुष्य है। उसने संख्या से परिचित होना उतना ही आवश्यक समझा जितना कि जीवन के लिए पानी और हवा। मनुष्य ने धीरे-धीरे संख्या संकेतों का आविष्कार किया और आज वही मनुष्य संख्या के जटिल ताने-बाने के आधार पर चन्द्र यात्रा कर आया है, और निकट भविष्य में ही मंगल और अन्य ग्रहों की यात्रा भी संख्या के भरोसे करेगा। इन यात्राओं का लेखा-जोखा वह बनाने में लगा हुआ है।

संख्या का इतिहास ईसा से ३४०० वर्ष पूर्व से हमें शिलालेखों में प्राप्त होता है। इन शिलालेखों में विशाल संख्याएं उत्कीर्ण हैं। इन शिलालेखों में से कुछ आक्सफोर्ड (इंगलैण्ड) के संग्रहालय में रखे हुए हैं।

संख्या का इतिहास पुराना है

यों संख्या का इतिहास उपरोक्त शिलालेखों से भी पुराना है। संख्या का इतिहास मनुष्य की जिज्ञासा और ज्ञानपिपासा के इतिहास की भांति रोचक और प्राचीन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब मनुष्य कन्दराओं में रहता था, तब वह आज के मनुष्य की तरह गणना करना नहीं जानता था और न ही किसी प्रकार की संख्या से उसका परिचय था। उसे भोजन प्रकृति से मिलता था और उस युग के हथियारों से ही वह भोजन के लिए शिकार भी किया करता था। उसे अपने इस सरल जीवन के लिए गणना या संख्या की आवश्यकता नहीं थी।

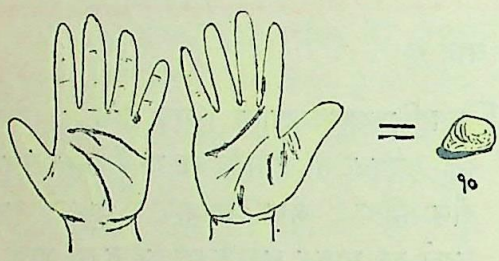

चित्र—१

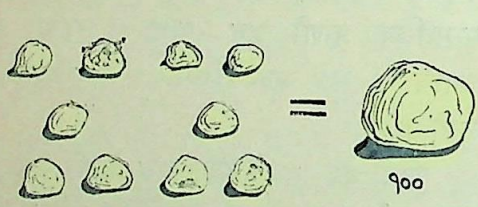

चित्र—२

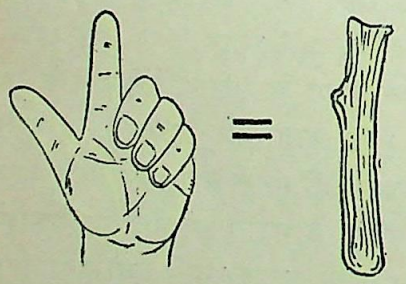

चित्र—३

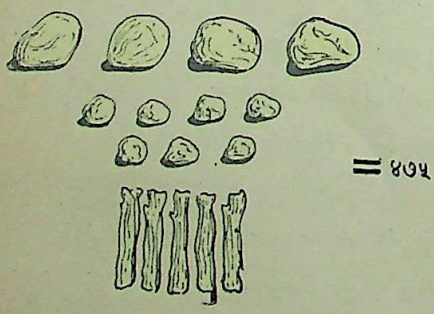

चित्र—४

धीरे-धीरे मनुष्य के पारिवारिक जीवन का विकास हुआ और मनुष्य समाज का ढांचा भी बनने लगा। कृषि और पशुपालन भी आरम्भ हुआ। तभी उसे गणना की आवश्यकता पड़ी और उसी समय शायद मनुष्य ने संख्या का आविष्कार किया होगा।

सर्वप्रथम मनुष्य ने पशुओं की गणना करने के लिए एक रस्सी में एक पशु के लिए एक गांठ दूसरे के लिए दूसरी गांठ देकर अपनी इस समस्या का कुछ हल निकालना आरम्भ किया।

हाथ की दस अंगुलियां

जब रस्सी से भी काम में अड़चनें आने लगीं तब मनुष्य ने अपने हाथ की दस उंगलियों से गिनना आरंभ किया, लेकिन केवल दस तक की संख्या से कार्य सुगमता से नहीं हो सकता था। उसके लिए फिर हमारे पूर्वजों ने विचार-विमर्श किया और इस विधि में सुधार कर मनुष्य ने अंगुलियों के साथ छोटे-बड़े पत्थर के टुकड़ों का उपयोग करना आरम्भ किया। दस अंगुलियों के लिए एक छोटा पत्थर लिया, अर्थात दस अंगुलियां बराबर एक छोटे पत्थर के, दूसरा छोटा पत्थर दूसरे दस के बराबर। जब दस की संख्या के लिए एक छोटा पत्थर लिया गया तो दस छोटे पत्थरों की जगह एक बड़े पत्थर को एक सौ माना गया। (चित्र १, २)

एक संख्या के लिए लकड़ी का एक टुकड़ा लिया गया। (चित्र ३)

इस प्रकार उस युग के मनुष्य ने अपनी गणना विधि का आविष्कार किया। अब अगर उसे ४७५ पशुओं का हिसाब रखना पड़ता तो वह चार बड़े पत्थर सात छोटे पत्थर और पांच लकड़ियों को रखकर हिसाब रख सकता था। (चित्र ४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार दस की संख्या मनुष्य को गणना प्रणाली का आधार बनी लेकिन केवल दस की संख्या को ही आधार नहीं माना गया। कुछ लोग केवल एक ही हाथ की अंगुलियों की गणना करते थे, उनका आधार पांच की संख्या बनी। कुछ लोग पैर की और हाथ की सब अंगुलियों की गणना करते थे, उनकी आधार संख्या बीस बनी। कुछ लोग केवल दो हाथों को गिनकर दो की संख्या को ही आधार मानते थे।

चिह्नों का उपयोग

बाद में जब मनुष्य ने अनुभव किया कि कंकड़ों, पत्थरों और लकड़ियों का उपयोग कठिन और असुविधाजनक है, तब उसने उपरोक्त साधनों को त्याग कर चिह्नों का उपयोग करने की विधि निकाली और इन चिह्नों को उसने पढ़ना और लिखना भी सीखा। बैबीलोन में ५००० वर्ष पूर्व का एक शिलालेख पाया गया है जिसमें एक, दस और सौ के चिह्न दिखाये गये हैं। (चित्र ५)

चित्र ६ में यह प्रदर्शित किया गया है कि उपरोक्त चिह्नों द्वारा किस प्रकार एक से दस तक की संख्या और उससे आगे की संख्या लिखी जाती थी।

उपरोक्त चिह्नों की सहायता से आज भी कोई संख्या लिखी जा सकती है। अगर आप को ३४५ लिखना हो तो चित्र ७ की तरह निशान बनाकर लिख सकते हैं।

प्राचीन मिस्र में संख्या और उसके योग की एक शुद्ध प्रणाली निकाली गयी थी, जिसे सांकेतिक प्रणाली कहा गया (चित्र ८)।

अब अगर इस सांकेतिक प्रणाली द्वारा १५२५ लिखना है तो चित्र ९ के अनुसार लिखा जायेगा।

इस प्रकार की प्रणाली में बहुत-सी व्यावहारिक कठिनाइयां होती थीं। मिस्र के लोग इस प्रकार की प्रणाली का उपयोग शिला-

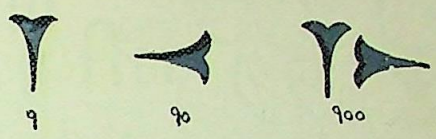

चित्र—५

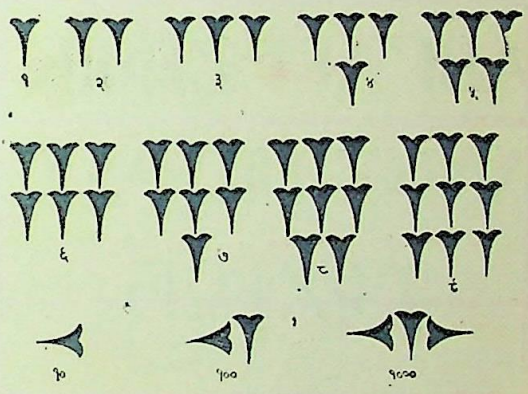

चित्र—६

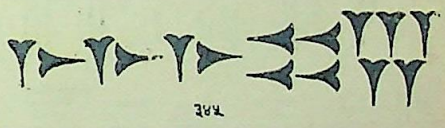

चित्र—७

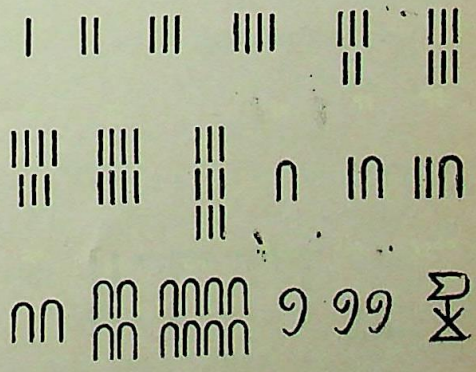

चित्र—८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

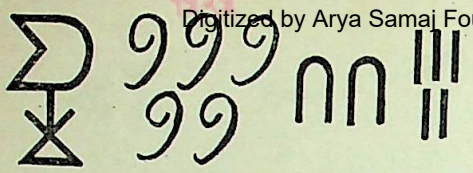

चित्र—९

चित्र—१०

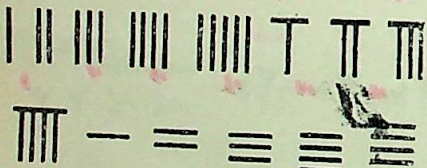

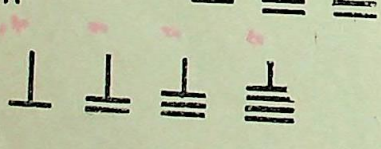

चित्र—११

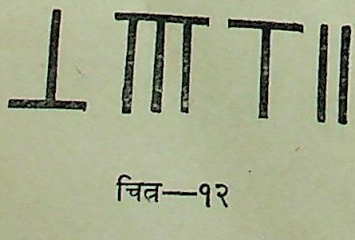

चित्र—१२

लेखों और भवनों आदि पर सजावट के लिए किया करते थे। इस प्रणाली को पुरोहितों या पादरियों की प्रणाली भी कहा जाता है। यह प्रणाली उस युग में बहुत लाभप्रद थी।

प्राचीन यूनान के निवासियों ने संख्या को लिखने की अनेक प्रणालियां अपनायीं। आधुनिक तथा प्रचलित संख्या प्रणाली यूनान द्वारा विकसित प्रणाली ही मानी जाती है। यूनान में संख्या के लिए अपनी वर्णमाला के सारे शब्दों का और साथ ही साथ वर्णमाला के अतिरिक्त तीन अलग चिह्नों का भी उपयोग किया गया, वर्णमाला का प्रत्येक शब्द एक निश्चित संख्या का संकेत होता था। वर्णमाला के प्रथम नौ शब्द क्रमशः एक से नौ तक की संख्या का संकेत थे। दूसरे नौ शब्द दस से नब्बे तक की संख्या के संकेत थे और अन्तिम नौ शब्द एक सौ से नौ सौ तक के लिए निश्चित किये गये थे। उन लोगों ने शून्य के लिए कोई संकेत नहीं बनाया था। यूनानी प्रणाली की संख्याएं चित्र १० में हैं।

छड़ियों के रूप में

छड़ियों के रूप में संख्या को लिखने की प्रणाली प्राचीन चीनी प्रणाली है। इस प्रणाली को वर्गीकृत प्रणाली कहा जाता है अर्थात जो चिह्न अलग-अलग संख्या के लिए होते थे उनका स्थान जिस जगह पर वह लिखे जाते थे वहां पर अलग-अलग माना जाता था। यह प्रणाली भी ठीक आधुनिक प्रणाली की तरह थी, जैसे अगर हमें ५५५ लिखना है तो उसका संकेत ५ की संख्या से होगा लेकिन एक साथ ५५५ हो जाता है। ठीक इसी तरह की प्रणाली प्राचीन चीन में अपनायी जाती थी। (चित्र ११)

इस प्रणाली में एक सौ की संख्या के लिए केवल एक की संख्या वाला संकेत होता, दो की संख्या या दो सौ की संख्या का संकेत भी दो के संकेत की तरह ही लिखा जाता था। एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हजार लिखने के लिए दस की संख्या का संकेत निश्चित था। अगर चीनी प्रणाली द्वारा ६८६२ लिखना होगा तो चित्र १२ की तरह लिखा जायगा।

रोमनों ने संख्या की जो प्रणाली अपनायी वह चित्र १३ की तरह है।

रोमनों की यह प्रणाली आज भी बिना किसी असुविधा के अपनायी जाती है। इसको समझना आसान है। रोमन प्रणाली आज भी संसार के अनेक देशों में कुछ विशिष्ट उपयोगों में लायी जाती है। इस प्रणाली से पुस्तकों की पाठ संख्या या अध्याय संख्या, घड़ी के अंक, स्मारक इत्यादि चिह्नित किये जाते हैं।

हिन्दू-अरबी प्रणाली

हमारी अपनी संख्या प्रणाली या गिनती को हिन्दू-अरबी संख्या प्रणाली कहा जाता है। लेकिन यह प्रणाली मूलरूप से शुद्ध भारतीय प्रणाली है। इसका आविष्कार भारत में ही हुआ था। बाद में अरबों ने भी इसे अपनाया और अपनी प्रणाली माना। अब इस प्रणाली को अन्य देशों ने भी अपना लिया है। यही प्रणाली आधुनिक प्रणाली भी मानी जाती है।

अरबों ने इस प्रणाली को अपना कर हिन्दू-अरबी प्रणाली कहा। ८वीं शताब्दी में अरबों ने स्पेन में विजय पायी और वहां इस प्रणाली को हिन्दू-अरबी प्रणाली के रूप में फैलाया। १०वीं शताब्दी में हिन्दू-अरबी प्रणाली चित्र १४ की तरह लिखी जाती थी।

हिन्दू-अरबी प्रणाली को इसकी वैज्ञानिकता के कारण यूरोप के कई देशों ने अपनाना शुरू किया। १५वीं शताब्दी तक हिन्दू-अरबी प्रणाली की संख्याओं में परिवर्तन होते रहे और उनका आधुनिक स्वरूप चित्र १५ की तरह बना। इन संकेतों को लगभग सारे संसार में उपयोग में लाया जाता है।

I II III IV V VI VII
1 2 3 4 5 6 7

VIII IX X XX L C
8 9 10 20 50 100

D M CCIↃↃ
500 1,000 10,000

चित्र—१३

चित्र—१४

1 2 3 4 5 6 7 8 9 0

चित्र—१५

दशमलव प्रणाली

संख्या की आधुनिक प्रणाली का आधार दस माना गया है। इसको दशमलव प्रणाली भी कहा जाता है। दशमलव शब्द का अर्थ हुआ दस। यह स्थान प्रणाली भी है क्योंकि इसके संख्या की अलग-अलग स्थिति में अलग-अलग माप होती है। यहां पर एक विशेष संकेत शून्य के लिए भी बनाया गया है, जिससे इसमें कसी प्रकार की त्रुटि होना असम्भव है।

उपरोक्त आधुनिक दशमलव प्रणाली से हम बिना किसी कठिनाई के कोई भी राशि सुगमतापूर्वक लिख सकते हैं। इस प्रणाली से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

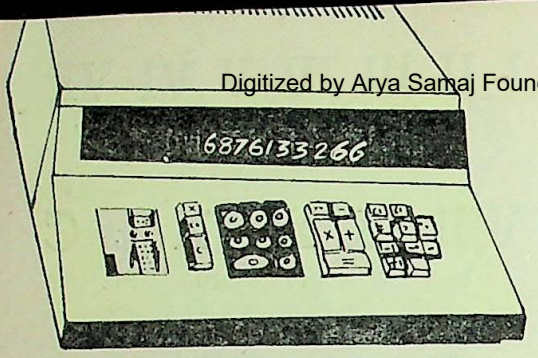

उच्च स्तरीय कठिनतम गणनाएं अब संगणकों की सहायता से सरल हो गयी हैं। ऐसे छोटे-छोटे यंत्र बड़े-बड़े जोड़-बाकी-गुणा-भाग आदि के सवाल कुछ ही सैकंडों में हल कर देते हैं शुद्धता की गारंटी के साथ

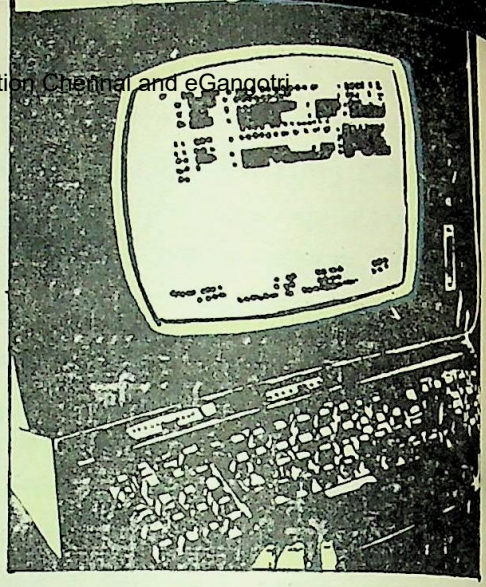

लन्दन के हवाई अड्डे पर यह कम्प्यूटर माल के आवागमन का पूरा लेखा रखता है

छोटी से छोटी राशि भी लिखी जा सकती है।

और अब · · · संगणक (कम्प्यूटर) !

रस्सी की गांठों और कंकड़-पत्थरों से गणना करने वाला मनुष्य आज चंद्रमा की यात्रा कर रहा है। वह सौर-मण्डल और ब्रह्माण्ड के रहस्यों का उद्घाटन कर रहा है। इस उद्घाटन की कुंजी है शून्य व दशमलव। इन दोनों का जन्म हिन्दू-अरबी संख्या संकेतों से हुआ है। आधुनिक युग में संख्या से संगणक बना और संगणक से रहस्योद्घाटन होताहै। संख्या आधुनिक जीवन की आधारशिला है जिसके विवेचन और गणना से विज्ञान निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर होकर मानवता के लक्ष्य की ओर ले जा रहा है। ●

एक गूगल कितना होता है ?

संख्याओं की गणना में भारतीय पद्धति से इकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार, दस हजार, लाख, दस लाख, करोड़, दस करोड़, अरब, दस अरब, खरब, दस खरब··· । और विदेशी पद्धति से दस हजार तक तो यही क्रम रहता है, उससे आगे सौ हजार (लाख), फिर एक मिलियन (दस लाख) और उससे आगे क्रमशः बिलियन तक। **बिलियन** के दो मूल्य हैं। अमरीकी हिसाब से १००० मिलियन का एक बिलियन (१ के आगे ९ शून्य) और अंग्रेजी हिसाब से एक मिलियन मिलियन का एक बिलियन (१ के आगे १२ शून्य) होता है। अमरीकी हिसाब से ही गणना करें तो १००० बिलियन = १ **ट्रिलियन** और १००० ट्रिलियन = १ **क्वाड्रिलियन**। **आक्टीलियन** में १ के आगे २७ शून्य, **नानिलियन** में १ के आगे ३० शून्य, **नावेमडेसिलियन** में १ के आगे ६० शून्य, **विजिनटिलियन** में १ के आगे ६३ शून्य होते हैं।

और, १ के आगे १०० शून्य लगा दें तो बन जाता है एक **गूगल** !

जरा गिनकर देखिये तो !

आपने एक करोड़ (१० मिलियन) की गिनती गिनी है कभी ? मान लीजिए आपको एक रुपये के एक करोड़ करारे-करारे नोट गिनने को दिये जायें। यदि आप एक सेकंड में एक नोट गिनें और प्रतिदिन ८ घंटे लगातार यह काम करें, सप्ताह में एक दिन छुट्टी रखें, तो आपको करीब ६ सप्ताह लग जायेंगे उन एक करोड़ नोटों को गिनने में ! यदि इन नोटों की गड्डियों को एक के ऊपर एक रखें तो लगभग २ किलोमीटर ऊंचा स्तम्भ खड़ा हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीलिया या कामला

वी. मोहन

पीलिया, कामला, कांवर अथवा जॉण्डिस एक ही बीमारी के अनेक प्रचलित नाम हैं। इस में त्वचा की श्लेष्मा (म्यूक्स) झिल्लियों एवं नाखूनों का रंग पीला हो जाता है। यह बीमारी किसी भी उम्र, किसी भी जाति एवं किसी भी देशवासी को हो सकती है। कामला के कारण अनेक हैं। अतः कामला किसी रोग का नाम न होकर वह दशा है जब रुधिर में पित्त-वर्णक (बाइल-पिगमेंट्स) सामान्यतः की अपेक्षा बहुत अधिक अनुपात में पाये जाते हैं।

पित्त-वर्णक कैसे बनता है

लाल रुधिर कणिकाओं के अन्दर हीमोग्लोबिन नामक वर्णक पाया जाता है। जब लाल कणिकाएं नष्ट होती हैं तो हीमोग्लोबिन लौहमय पदार्थ एवं बिलीरूबिन नामक पदार्थ में टूट जाता है। बिलीरूबिन रक्त में प्रवाह करता हुआ यकृत के अन्दर स्थित शिरानालाभ (साइनुसॉइड), पित्त कोशिकाओं, और फिर पित्त नली से होता हुआ आंत में पहुंचता है। आंत में बिलीरूबिन, स्टर्कोबिलीनोजन कहलाता है, जो विसर्जित मल को रंग प्रदान करता है। कुछ बिलीरूबिन आंत से शोषित होकर पुनः रक्त प्रवाह से होकर गुर्दों में जा पहुंचता है, जहां से यह यूरोबिलीनोजन के रूप में मूत्र के द्वारा शरीर के बाहर विसर्जित हो जाता है।

कामला के प्रकार

कामला तीन प्रकार का हो सकता है—

१. **यकृत-पूर्व कामला** (रक्त संलायी कामला, हीमोलिटिक जॉण्डिस) —इस प्रकार के कामला का कारण रुधिर में उपस्थित लाल कणिकाओं का अधिक संख्या में नष्ट होना है।

२. **यकृत कामला** (हिपैटिक जॉण्डिस)—इसका कारण यकृत की विविध बीमारियां हैं, जैसे संक्रामी यकृत शोथ, पीत ज्वर, वेल्स रोग इत्यादि।

३. **यकृत-उत्तर कामला** (पोस्ट-हिपैटिक जॉण्डिस)—इसका कारण पित्तनली के मार्ग का रुद्ध होना है। उदाहरणार्थ, पित्तनली में पथरी होना, पित्तनली में निकोचन (स्ट्रिक्चर) होना, हिपैटिक ग्रुप की लसीका (लिम्फ) ग्रन्थियों का विवर्धन एवं अग्न्याशय ग्रन्थि के शीर्ष में कैंसर होना।

यह जानने के लिए कि प्राणी किस प्रकार के कामला से ग्रस्त है, कुछ परीक्षण किये जाते हैं—जैसे पेशाब की जांच। यकृत-उत्तर कामला से ग्रस्त प्राणी के पेशाब में यूरोबिलीनोजन अनुपस्थित रहता है जबकि यकृत-पूर्व कामला एवं यकृत कामला से पीड़ित रोगी के मूत्र में यूरोबिलीनोजन उपस्थित रहता है। इसी प्रकार यकृत-उत्तर कामला का रोगी 'वेण्डरबर्ग' नामक परीक्षण प्रत्यक्षग्राही (डायरेक्ट पॉजिटिव) देता है, जबकि यकृत-पूर्व कामला का रोगी अप्रत्यक्ष-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राही (इनडायरेक्ट नेगेटिव), और यकृत कामला का प्राणी उपरोक्त दोनों ही प्रकार का फल देता है। सीरम बिलीरूबिन एवं क्षारीय फॉस्फेट मापन इत्यादि अन्य परीक्षण हैं जो कामला की डिग्री एवं कामला के प्रकार बताने में सहायता करते हैं।

यकृत-पूर्व कामला

जब लाल रुधिर कणिकाओं में अथवा प्लाज्मा में कोई हानिकारक पदार्थ प्रवेश कर जाता है, अथवा जन्म से ही उपस्थित होता है तो उसके कारण लाल कणिकाएं नष्ट होने लगती हैं। उदाहरणार्थ सहज रक्त-संलायी (कॉनजेनिटल हीमोलिटिक) कामला का कारण लाल रुधिर कणिकाओं का अधिक गोल होना है; फलःस्वरूप वे आसानी से फट जाती हैं। बिखरा हुआ हीमोग्लोबिन बिलीरूबिन पैदा करता है। अतः बिलीरूबिन की मात्रा सामान्यतः की अपेक्षा बहुत अधिक हो जाती है। फलतः कामला की दशा उत्पन्न हो जाती है। यकृत-पूर्व कामला में त्वचा का रंग हलके पीले रंग का होता है। विसर्जित मल अपना सामान्य रंग लिये होता है एवं पेशाब में यूरोबिलीनोजन वर्णक अधिक मात्रा में विसर्जित होता है। रोगी की तिल्ली बढ़ जाती है। रुधिर में लाल कणिकाओं की कमी होती है। किन्तु लाल रुधिर कणिकाओं से पूर्ववत अवस्था की कणिकाएं (रेटिक्युलो-साइट्स) अधिक संख्या में पायी जाती हैं। बहुधा रोगी के पैर में व्रण (घाव) हो जाते हैं।

यकृत कामला

संक्रामी यकृत शोथ (इनफेक्टिव हिपैटाइटिस) यकृत कामला का प्रमुख कारण है। संक्रामी यकृत शोथ विषाणु (वाइरस) द्वारा उत्पन्न रोग है जो तेजी से बहुधा महामारी का रूप ले लेता है—विशेषतः युद्ध के अवसर पर, सैनिकों में। द्वितीय महायुद्ध के अवसर पर यह रोग महामारी के रूप में सीरिया, उत्तरी अफ्रीका और इटली के सैनिकों में फैल गया था। यह रोग दूषित भोजन तथा विषाणुयुक्त जल के कारण फैलता है। विषाणु मुख, आंत से होता हुआ यकृत में जा पहुंचता है, जहां पर यह यकृत कोशिकाओं में अनेक परिवर्तन करता है। फलतः कोशिकाएं सुचारु रूप से कार्य नहीं कर पाती हैं और कामला उत्पन्न होता है। यह विषाणु वाइरस 'ए' कहलाता है। एक दूसरी प्रकार का विषाणु (वाइरस 'बी') भी कामला उत्पन्न करता है जिसे समधर्मी (होमोलोगस) सीरम कामला के नाम से पुकारते हैं। किन्तु इस प्रकार का विषाणु मुख मार्ग के बजाय सीधे रक्त में प्रवेश करके यकृत शोथ उत्पन्न करता है। संक्रामक यकृत शोथ का उद्भवन काल लगभग एक मास होता है जब कि समधर्मी सीरम कामला का उद्भवन काल लगभग सौ दिन होता है।

प्रारम्भ—संक्रामक यकृत शोथ का प्रारम्भ कई प्रकार से हो सकता है। अलक्षित प्रकार के प्रारम्भ में उसे भूख नहीं लगती। उसे यह नहीं पता चल पाता है कि वह संक्रामक यकृत शोथ का शिकार हो गया है। लक्षित प्रकार के प्रारम्भ में उसे एकाएक तीव्र ज्वर हो आता है और कामला ज्वर के एक-दो दिन बाद ही स्पष्ट हो जाता है। एक तीसरी प्रकार के प्रारम्भ में व्यक्ति नित्य की भांति कार्य करता है और एक दिन कार्य करते-करते उसे पता चलता है कि उसका सम्पूर्ण शरीर एवं आंखें पीली हैं। एक चौथे प्रकार के प्रारम्भ में कामला स्पष्ट नहीं होता है। रोगी के शरीर पर पित्ती अथवा विस्फोट उभर आते हैं एवं उसके जोड़ों में दर्द होता है।

सामान्यतः संक्रामक यकृत शोथ की पूर्व-कामला अवस्था में बुखार और सिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ-पैर व पेट में दर्द होता है। एक खास बात यह है कि प्राणी को जो चीजें अच्छी लगती हैं अथवा जिनके सेवन की उसे आदत है (जैसे बीड़ी-सिगरेट पीना) वे रुग्णावस्था में बिलकुल अच्छी नहीं लगती हैं। इस अवस्था में रोगी को कब्ज या दस्त हो सकते हैं। यह अवस्था तीन-चार दिन तक रहती है। तत्पश्चात कामला अवस्था होती है जिसमें रोगी सरसों के तेल की तरह पीला पेशाब करता है तथा शरीर की म्यूकस झिल्लियों, नेत्र झिल्ली एवं त्वचा का रंग पीला हो जाता है। इस अवस्था में बुखार उतर जाता है किन्तु पाचन संस्थान सम्बन्धी तीन लक्षण प्रगट होते हैं—जैसे भूख का न लगना, पेट के दाहनी ओर पसलियों के नीचे दर्द का अनुभव करना, मतली, वमन या कब्ज का अनुभव करना। इस अवस्था में, जो सात से दस दिन तक रहती है, यकृत बढ़ जाता है एवं उसे दबाने से पीड़ा उत्पन्न होती है।

कामला अवस्था के उपरान्त उत्तर-कामला अवस्था आती है जिसमें रोग में सुधार होता है। रोगी को भूख लगने लगती है। पेशाब का रंग पूर्ववत अवस्था में आ जाता है। म्यूकस झिल्लियों, त्वचा व नेत्र झिल्ली का रंग भी धीरे-धीरे अपने पूर्ववत रंग पर आ जाता है। यह अवस्था भी लगभग एक सप्ताह तक रहती है। बढ़े हुए यकृत को अपनी पूर्ववत अवस्था में आने में एक महीना तक लग जाता है।

पूर्वानुमान की दृष्टि से अधिकांश रोगी संक्रामक यकृत शोथ से सुधरकर भले-चंगे हो जाते हैं। किन्तु रोग के उपद्रवी प्रभाव अवश्य ध्यान में रखने चाहिए। उदाहरणार्थ—आंत व त्वचा का अन्तः रक्तस्राव, मस्तिष्कावरण शोथ, यकृत संन्यास (कॉमा), तीव्र यकृत-पात। रोगी के मरने का कारण यकृत संन्यास,

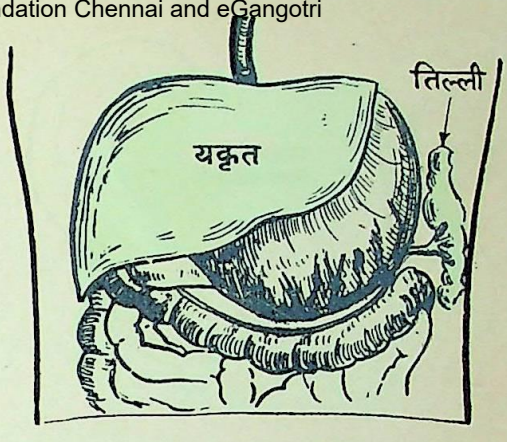

यकृत और तिल्ली

शीघ्रता से बढ़ने वाला कामला, सिरोसिस, अथवा ईसोफेगस में रक्तस्राव होता है।

रोगी को कम से कम एक महीना पूर्णतः विश्राम करना चाहिए।

रोगी को चर्बी-मुक्त भोजन देना चाहिए। अतः कार्बोहाइड्रेट व शकर वाले भोजन पदार्थ दिये जाते हैं। रोगी को क्रीम निकाला हुआ दूध देना चाहिए। आवश्यकता हो तो शिरा द्वारा शरीर में ग्लूकोज चढ़ाया जा सकता है।

इस रोग में औषधि का प्रचलन अधिक नहीं है और यथार्थ में वह रोग को शीघ्र अच्छा करने में सफल भी नहीं है। किन्तु संक्रामकता को समाप्त करने के लिए टेट्रा-साइक्लिन ग्रुप की औषधियां दी जाती हैं। रोग की अवधि को कम करने के लिए प्रिडनीसोलोन औषधियां दी जा सकती हैं। यदि रोगी को मतली अथवा वमन हो रही हो तो ऐवामीन (२५ मिलिग्राम) भोजन से पूर्व दे देना चाहिए।

संक्रामक यकृत शोथ से बचाव के लिए दस मिलिलीटर गामा ग्लाबलीन, इंजेक्शन द्वारा, रोगी के शरीर में पहुंचायी जाती है।

यकृत-उत्तर कामला

यकृत-उत्तर कामला के दो प्रमुख कारण हैं। पित्तनली में पथरी होना अथवा अग्न्या-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

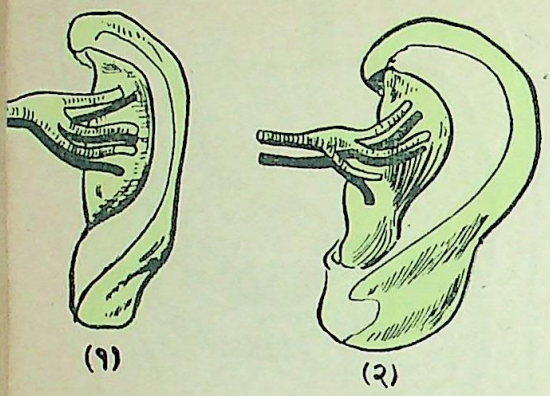

तिल्ली : (१) सामान्य अवस्था
(२) बढ़ी हुई

शय के शीर्ष में कैंसर होना। इस प्रकार की कामला में त्वचा का रंग गाढ़े पीले रंग का होता है। विसर्जित मल सफेद रंग का होता है क्योंकि पित्तनली का मार्ग रुद्ध हो जाने के कारण पित्तवर्णक आंत में नहीं पहुंच पाता है। रोगी सारे शरीर में खुजली महसूस करता है एवं बहुधा उसके हृदय की गति सामान्य की अपेक्षा धीमी हो जाती है।

यदि परीक्षण द्वारा यह पता चल गया हो कि प्रस्तुत कामला यकृत-उत्तर प्रकार का है, तो उस अवस्था में कामला का कारण जानने के लिए नीचे दी गयी सारणी को ध्यान में रखना चाहिए।

यकृत-उत्तर कामला का उपचार शल्य चिकित्सा द्वारा प्रस्तुत कारण का निवारण करना है। किन्तु आपरेशन से पूर्व रोगी को सर्जरी योग्य बनाने के लिए चिकित्सक की सलाह से आवश्यक उपचार अवश्य करना चाहिए।

यदि यकृत-उत्तर कामला का कारण पित्तनली में पथरी होना है तो आपरेशन तब तक नहीं किया जाता जब तक कामला उपस्थित रहता है। किन्तु यदि कामला के समाप्त होने के कोई लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते हैं, और ज्वर ३९-४०° सें. रहता है तो विवशतावश कामला अवस्था में भी आपरेशन करना पड़ता है। किन्तु उस अवस्था में कम से कम शल्य क्रिया की जाती है और केवल पित्तनली से पथरी निकाल दी जाती है।

यदि यकृत-उत्तर कामला का कारण अग्न्याशय के शीर्ष में कैंसर है तो यदि कैंसर रोग से ग्रसित अंग निकाल सकते हैं तो निकाल देते हैं अथवा फिर पित्त के सुचारु रूप से प्रवाह के लिए एक नया मार्ग बना देते हैं जिसके द्वारा पित्त, पित्ताशय में बनाये गये एक छिद्र से होकर, छोटी आंत में पहुंचने लगता है। इस आपरेशन को कोलेसिस्टो-जिजुनॉक्टमी कहते हैं।

लक्षण या चिह्न	यदि पित्त नली में पथरी है	यदि अग्न्याशय के शीर्ष में कैंसर है
पीड़ा	बहुधा तीव्र पीड़ा उठती है	पीड़ा नहीं होती है
कामला	बदली की तरह कामला घटता-बढ़ता रहता है	कामला बढ़ता ही जाता है
ज्वर	ठंड सहित ज्वर हो सकता है	ज्वर नहीं रहता है
पित्ताशय	पित्ताशय परिस्पर्शनीय (पैल्पेबल) नहीं रहता है	पित्ताशय परिस्पर्शनीय हो सकता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्धियां

दिल की हालत टेलीफोन पर

आधुनिक सभ्यता की उन्नति के साथ ही साथ हृदय रोगों में वृद्धि होती जा रही है। ब्रिटेन में——जहां हृदय रोगों के कारण प्रति वर्ष १ लाख ३० हजार से अधिक व्यक्ति काल के ग्रास बन जाते हैं——इन रोगों की रोकथाम के लिए नये-नये उपाय खोज निकाले जा रहे हैं। डाक्टरों का मत है कि यदि रोगी के दिल की हालत पर निरन्तर ध्यान रखा जाय तो दिल के दौरे का पहले से ही संकेत मिल सकता है। इसके लिए विशेष प्रकार के टेप-रिकार्डर बनाये गये हैं जो रोगी के हृदय का इलेक्ट्रो-कार्डियोग्राम अंकित करते रहते हैं जिसे रोगी निश्चित समय पर अथवा गड़बड़ी अनुभव करने पर अपने चिकित्सक के पास ले जाता है।

हाल में ही स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के चिकित्सा केन्द्र में एक ऐसे यंत्र का सफल प्रदर्शन किया गया है जिसके द्वारा दूरस्थ रोगी का इलेक्ट्रो-कार्डियोग्राम टेलीफोन के द्वारा डाक्टर तक सीधे पहुंचाया जा सकता है। उक्त प्रदर्शन में एक रोगी ने मनीला (फिलीपीन्स) से स्टेनफोर्ड केन्द्र (इंगलैण्ड) को फोन करके अपने हृदय का इ. का. ग्रा. दिखाया। क्योंकि यह फोन कॉल उपग्रह द्वारा गया, अतः इ.का.ग्रा. ने लगभग ८२,००० किलोमीटर की यात्रा की और उसकी स्पष्टता में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा।

दिल की धड़कनों की 'चौकीदारी' करने वाले इस पाकेट साइज यंत्र का वजन लगभग १५० ग्राम है और यह रोगी के सीने से लगा रहता है। हृदय की धड़कन में गड़बड़ होते ही इस यंत्र में सेचेतावनी की आवाज 'बीप-बीप...' निकलने लगती है तब रोगी तुरन्त अपने डाक्टर को टेलीफोन करता है और फोन के रिसीवर को सीने से लगा देता है। डाक्टर अपने फोन के रिसीवर को एक विशेष टर्मिनल में लगाता है जो रोगी के इलेक्ट्रो-कार्डियोग्राम को परदे पर अंकित कर देता है।

आकाश गंगा के चार पड़ोसी और

हमारी आकाश गंगा के पास-पड़ोस की नीहारिकाओं की संख्या बढ़ती जा रही है। गत वर्ष दो नयी नीहारिकाओं——मैफी प्रथम व द्वितीय——का पता लगा था जो बहुत छोटी हैं और लगभग ४० लाख प्रकाश वर्ष की दूरी पर हैं। अब कनाडा के एक खगोलविद डा. सिडनी वान डेन बर्ग ने चार और नीहारिकाओं को खोज लिया है। इस प्रकार हमारी पड़ोसी नीहारिकाओं की संख्या ३० हो गयी है। ये नयी नीहारिकाएं विराट एण्ड्रोमिडा नीहारिका के सन्निकट पायी गयी हैं जो २० लाख प्रकाश वर्ष दूर है। डा. वान डेन बर्ग ने इनके नाम रखे हैं——ऐंड प्रथम, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ। ये बहुत ही छोटी हैं। प्रत्येक में केवल कुछ लाख बहुत पुराने तारे हैं——जबकि हमारी आकाश गंगा में १००००० अरब तारे हैं।

क्रिस्टलहीन बरफ

बरफ सामान्यतः क्रिस्टल वाली (रवेदार) होती है। पानी को जमाकर क्रिस्टलहीन (एमारफस) अवस्था में प्राप्त करने के अनेक प्रयास किये गये हैं और अब शिकागो विश्वविद्यालय के दो रसायन शास्त्रियों डेविड ओलेण्डर तथा स्टुअर्ट राइस ने दावा किया है कि उन्होंने क्रिस्टलहीन बरफ जमाने में सफलता प्राप्त कर ली है। क्रिस्टल रूप में परिवर्तित हो जाने के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरफ से किये गये प्रयोगों में वास्तविकता नहीं रह पाती। अतः बिना रवे के 'ठोस पानी' का वैज्ञानिक प्रयोगों में बहुत महत्त्व है क्योंकि उसमें पानी का वास्तविक क्रिस्टल-हीन स्वरूप बना रहता है।

अपराध का पता लगाने को रेडियो-एक्टिव तकनीक

कपड़ा, कागज, लकड़ी आदि को अपराधी लोग निडर एवं निःशंक होकर छू लेते हैं—इन पर अंगुली के निशान बहुत ही कठिनाई से जाने जा सकते हैं। किन्तु अब रेडियो-एक्टिव तकनीक द्वारा ऐसे पदार्थों पर भी अंगुलियों के निशान प्रकट हो सकेंगे। इस तकनीक का विकास यूनाइटेड किंगडम एटामिक एनर्जी अथॉरिटी के हारवेल (इंगलैंड) स्थित अनुसंधान केन्द्र में किया जा रहा है।

यह तकनीक इस तथ्य पर आधारित है कि सल्फर डाइआक्साइड गैस पसीने आदि त्वक्-उत्सर्जनों पर बहुत अधिक प्रतिक्रिया करती है और रेडियो-एक्टिव गैस में भी यह गुण है। इससे अंगूठे या अंगुलियों की छाप स्पष्ट अंकित की जा सकती है।

अपराधी द्वारा छुए गये कपड़े या कागज आधे घंटे तक एक कक्ष में लटकाये रखे जाते हैं जिसमें रेडियो-एक्टिव सल्फर डाइ-आक्साइड गैस छोड़ी हुई होती है (१० लाख भाग वायु में एक भाग गैस)। उन पदार्थों को तब एक्स-रे फिल्म पर लगभग १० घंटे दबाकर रखा जाता है जिससे अंगूठे या अंगुलियों की छाप फिल्म पर छप जाती है।

'व्यर्थ' हारमोन की उपयोगिता

हमारे शरीर की त्वचा में 'मेलैनोसाइट' नामक वर्ण-कोशिकाएं होती हैं जो त्वचा के रंग को निर्धारित करती हैं। किन्तु हमारी त्वचा का रंग पैतृक गुणों पर निर्भर रहता है—गिरगिट की तरह हम अपनी चमड़ी का रंग बदल नहीं सकते। इसलिए हमारी मेलैनोसाइट कोशिकाओं को उद्दीपन प्रदान करने वाला हारमोन (मेलैनोसाइट-स्टिम्युलेटिंग हारमोन) एक 'व्यर्थ' पदार्थ है—यह कोई कार्य नहीं करता। किन्तु इस हारमोन का (जिसे एम-एस-एच कहते हैं) एक निराला उपयोग अमरीकी वैज्ञानिकों ने खोज निकाला है। उनके प्रयोगों एवं परीक्षणों के अनुसार इस हारमोन से मनुष्य के ध्यान और दृष्टि-स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है। कृत्रिम रूप से तैयार किये गये इस हारमोन के इंजेक्शन देने से मस्तिष्क की अनुक्रिया आश्चर्यजनक रूप से बढ़ गयी। इस प्रकार दिमागी कमजोरी वाले व्यक्तियों के इलाज के लिए यह हारमोन वरदान सिद्ध होगा।

पाक हमाम धूप से गरम होंगे

पाकिस्तान एटामिक पावर कमीशन के लाहोर स्थित अनुसंधान केन्द्र में सूर्य की धूप से पानी गरम करने तथा जल-आसवन (डिस्टिलेशन) की विधियां खोज निकाली गयी हैं। केन्द्र में इस विधि से पानी गरम करने के सात माडल तैयार कर लिये गये हैं जिनमें से एक की विकिरण क्षमता एक किलोवाट है। पानी गरम करने वाले इस 'सोलर हीटर' में सामने की तरफ कांच लगा हुआ है। पिछली सरदियों में प्लास्टिक वाले दस हीटर विभिन्न मकानों पर लगाये गये और उन्होंने बहुत अच्छा तथा उत्साहवर्द्धक कार्य किया। सूर्य धूप से जल-आसवन के प्लांट से प्रतिदिन ४५ लीटर शुद्ध जल प्राप्त हो सकता है जो चार-पांच व्यक्तियों के एक परिवार के लिए काफी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लूना–१६ की उपलब्धि

सोवियत अमानुषित अन्तरिक्षयान लूना-१६ के स्वचालित यंत्रों द्वारा लायी गयी चन्द्र-धूलि के दो नमूने विशेष महत्त्व-पूर्ण हैं क्योंकि ये उस धूल के अंश हैं जो चन्द्र-तल पर तीन खरब (३०,००० करोड़) वर्षों से अविचल पड़ी है। इस धूल की 'विकिरण आयु' उस धूल की 'विकिरण आयु' की दुगुनी है जो अपोलो-११ के चन्द्र-यात्रियों द्वारा लायी गयी है।

अपोलो–१६ की उपलब्धियां

अमरीकी अंतरिक्षयान अपोलो-१६ की ११ दिन की चन्द्रयात्रा से चन्द्रमा के विषय में नयी बहुमूल्य जानकारी प्राप्त हुई है। इस बार चन्द्र-यात्री चन्द्रमा के उच्च पर्वतीय डेस्कार्टेस क्षेत्र से चट्टान-खण्ड पृथ्वी पर लाये हैं जिनके अध्ययन से चन्द्रमा की उत्पत्ति तथा सौर मण्डल के विषय में भी बहुमूल्य ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। अपोलो-१६ की यात्रा से वैज्ञानिकों को यह ज्ञात हुआ है कि चन्द्रमा के डेस्कार्टेस क्षेत्र के निकट कैली मैदान में चुम्बकीय क्षेत्र अप्रत्याशित रूप से प्रबल है। डेस्कार्टेस क्षेत्र से लाये गये एक चट्टानी टुकड़े में उन चट्टानी टुकड़ों से लगभग पांच गुनी रेडिय-धर्मिता पायी गयी है जिन्हें अपोलो–१४ तथा अपोलो–१५ के यात्री चन्द्रमा के निचले क्षेत्रों से लाये थे।

इन चन्द्रयात्रियों ने उस चन्द्रधूलि के नमूने एकत्र किये जिन पर सृष्टि के प्रारम्भ से ही सूर्य की किरणें नहीं पड़ी हैं।

अपोलो–१६ के यात्रियों ने चन्द्रतल पर विद्युतचालित चन्द्रगाड़ी को १७ किलो-मीटर प्रति घंटे की चाल से चलाया। यह प्रथम मानव-निर्मित वस्तु थी जो चन्द्रतल पर इतनी तीव्र गति से चली। ●

कूड़े-करकट पर इमारतें बनाने में खतरा

आमतौर पर गड्ढों वाली या निचली जमीन को समतल करने के लिए पुराने मलबे तथा कूड़े-करकट का भराव भरा जाता है। किन्तु इससे खतरनाक समस्याएं पैदा हो सकती हैं। कूड़े-करकट से निकली हुई मीथेन गैस कुछ समय में इकट्ठी होकर इमारत में रिस-रिसकर उसमें रहने वालों के स्वास्थ्य को संकट उत्पन्न कर सकती है। हाल में ही अमरीका के न्यू जरसी राज्य में एक दलदली भूमि को कूड़े-करकट से भरकर उस पर १३ करोड़ डालर की लागत के डाकघर का निर्माण अंशतः पूर्ण हो जाने के पश्चात पता चला कि इमारत में मीथेन गैस रिस रही है। तब उसमें फर्श के नीचे संवातन (वेंटिलेशन) की विशेष व्यवस्था करनी पड़ी।

व्हेल के गीत : भोजन की तलाश

व्हेल एक विशालकाय समुद्री जीव है जिसकी लम्बाई ३०-३५ मीटर होती है और जिसके पेट में समूचा हाथी आसानी से समा सकता है। 'बड़े पेट के भरन में हैं रहीम दुख बाढ़ि।' बेचारी व्हेल को भी अपने भोजन की तलाश में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। किन्तु प्रकृति ने इसकी सहायता के लिए प्रबंध कर रखा है। व्हेल 'गीत' गाती है और अपने गीत की ध्वनि-तरंगों की प्रतिध्वनि से इसे अपने शिकार का पता लग जाता है। ध्वनि-तरंगें शिकार से टकराकर लौटती हैं तो उनकी दूरी और दिशा का ज्ञान व्हेल को हो जाता है। और वह उस ओर बढ़कर शिकार मार लेती है। यह अनुमान उन जीव-वैज्ञानिकों का है जिन्होंने व्हेलों की कुछ जातियों के 'गीतों' को टेपरिकार्ड किया है। ये ध्वनियां इतनी तीव्र होती हैं कि सैकड़ों किलोमीटर की दूरी पर सुनी जा सकती हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि ये ध्वनियां व्हेलों द्वारा संभवतः पारस्परिक सम्पर्क के लिए की जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

English
WORK BOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles' letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded.*
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing and by doing *correctly.*
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress.*
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The work books are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : 80 P
Book II.....Price : Re. 1-00
Book III.....Price : Re. 1-20

For further enquiries please write to :

Sri Ram Mehra & Co.
EDUCATIONAL PUBLISHERS, AGRA

जगदीश मेहरा द्वारा मेहरा आफसेट प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा के लिए प्रकाशित
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

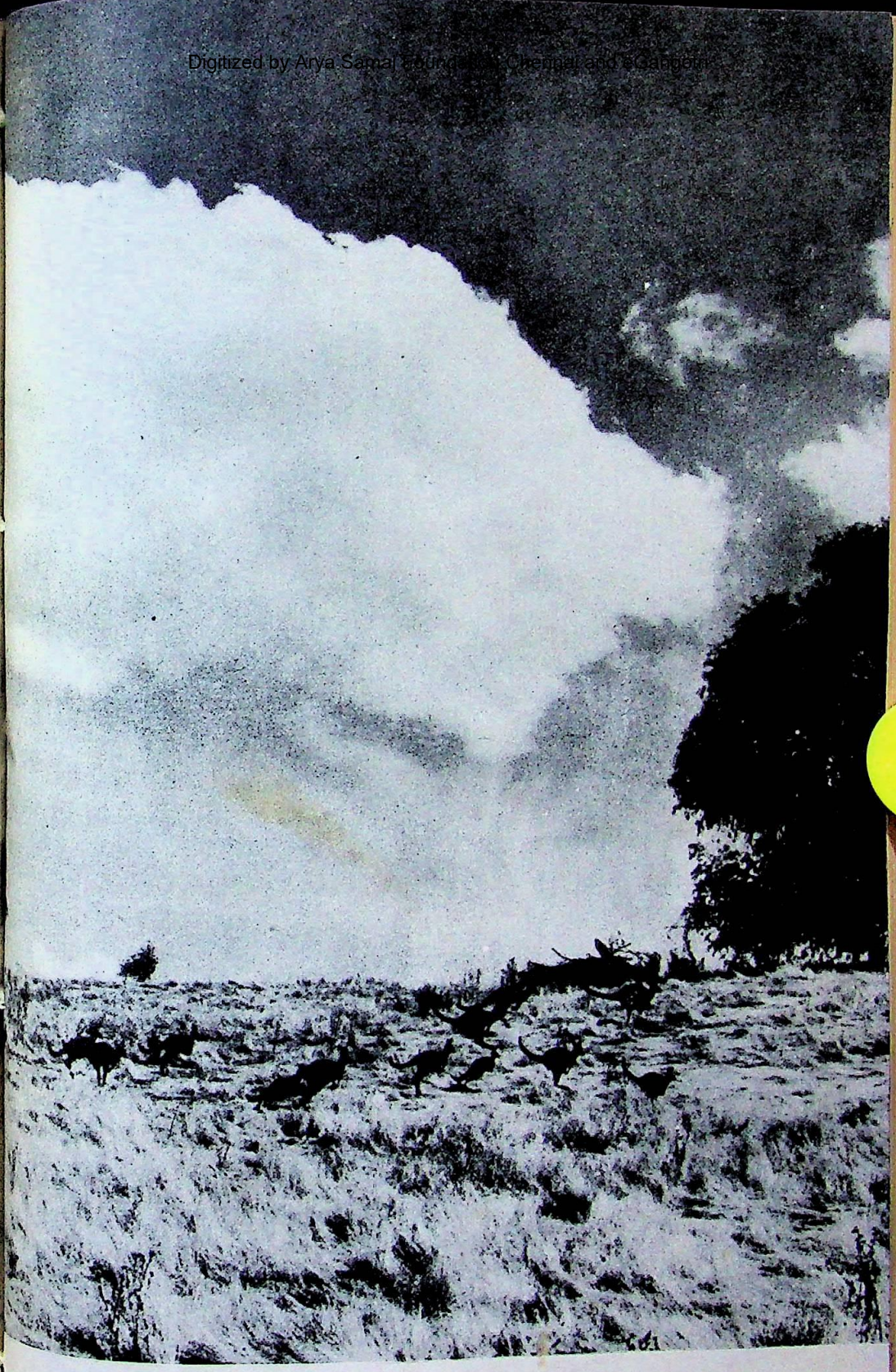

ये हैं घास के मैदानों में स्वच्छन्द कुलाँचे भरते हुए आस्ट्रेलिया के कंगारू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Registered with the Registrar of Newspapers for India under No. 6589/60
Price : Re. 1 VIGYAN-LOK June 1972 Regd. No. L 1410
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जुलाई अंक में पढ़िये

विज्ञान-लोक

गृह-सज्जा में निपुण ये जीव-जन्तु

अपने निवास स्थान को सजा-संवार कर रखने की प्रवृत्ति क्या केवल मानव के हिस्से में ही आयी है ? तुच्छ समझे जाने वाले जीव-जन्तु भी गृह-सज्जा में निपुण हैं। कैसे ?

अद्भुत आविष्कार : लेसर

लेसर का आविष्कार एक अद्भुत आविष्कार है जो अन्तरिक्ष युग के विज्ञान की एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करता है । क्या है यह लेसर ? इसकी क्रिया-विधि क्या है ?

अन्तरिक्ष और हम

मानव का अन्तरिक्ष में प्रवेश हो चुका है। अन्तरिक्ष में मानव गतिविधियां तेजी से बढ़ रही हैं। इस अन्तरिक्ष युग से हमें किस प्रकार सामंजस्य रखना है ?

मैंने नेवले पाले

जब चूहों ने नाक में दम कर दिया तो लेखक (डेनियल पीमी निक्स) ने नेवले पाले। और तब लेखक को नेवलों के बारे में जो जानकारी और अनुभव हुए उन्हें उसने इस कहानी में अत्यन्त रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है।

विनाश के बादल : टिड्डी दल

टिड्डी : एक अति तुच्छ कीट ! किन्तु जब यह गिरोह बनाकर हजारों-लाखों की संख्या में फसलों पर आक्रमण करती है तो देखते-देखते फसलें चौपट हो जाती हैं। इसकी रोकथाम के उपाय ?

तथा अन्य उपयोगी ज्ञानवर्द्धक लेख

● सभी लेख रंगीन चित्रों से सज्जित ● आकर्षक बहुरंगी मुखपृष्ठ

(20 जून तक प्रकाश्य)

एक प्रति Re. 1·00 : वार्षिक Rs. 12·00

अपनी प्रति आज ही अपने न्यूजएजेण्ट से सुरक्षित करा लीजिए या हमें लिखिए

मेहरा न्यूजपेपर्स, हास्पिटल रोड, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

A.H.W.